प्रकाशक—
रघुनाथप्रसाद सिंहानिया
नवराजस्थान ग्रन्थमाला कार्यालय
७३।ए, चासाधोवा पाड़ा स्ट्रीट
कलकत्ता ।

"PROSE PERMEATED AND MADE RHYTHMICAL WITH A FINE EMOTION, BECOMES THAT RAREST FORM OF ART, A PROSE POEM."

—*Francis Bickley.*

मुद्रक—
भगवतीप्रसाद सिंह वीसेन
नवराजस्थान प्रेस,
कलकत्ता ।

समर्पण

अब तक जीवन की मूर्च्छना में मैं जो कुछ बटोर सका हूँ, जिससे मुझे शक्ति और प्रकाश मिला है, जिसकी दारुण ज्वाला में ज्योति की प्रभा चमकी है, हृदय की उसी अत्यन्त कोमल भावना के ये आड़े टेढ़े चित्र आज पूज्य माता-पिता के श्रीचरणों में अत्यन्त आदरपूर्वक समर्पित हैं !

अक्षय तृतीया, १९६४ 'भँवर'

6 DWARKANATH TAGORE LANE
CALCUTTA.
PHONE B. B. [illegible]

শ্রীযুক্ত ভঁবরমলজি হিন্দি সাহিত্যের
প্রাচীন রীতির বন্ধন মোচন করিয়া
তাহার ভাষায় নূতন প্রাণ সঞ্চার
ও তাহার ভাবের ক্ষেত্রের সীমাপ্রসার
করিতে প্রবৃত্ত হইয়াছেন। এই ব্রতে
তিনি সফলতা লাভ করুন এই তাঁহাকে
আশীর্বাদ করি। ইতি ৩রা জুলাই ১৯৩৭

রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর

श्रीयुक्त भँवरमलजी हिन्दी साहित्य की प्राचीन रीति का वंधन मुक्त कर उस भापा मे नूतन प्राण संचार कर उसके भाव-क्षेत्र की सीमा-प्रसार करने में प्रवृत्त हुए हैं। उन्हे इस व्रत में सफलता मिले, यही मेरा आशीर्वाद है। इति तीसरी जुलाई, १९३७।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

भूमिका

अनुभवी भक्त अपने जीवनदेव की आरती कर रहा है; देवता के सामने अपने चित्त-सरोवर के इस मनोहर और सुरभित शतदल कमल को उसने उत्सर्गीकृत किया है। सहृदय रसिक जनों के लिये यह दृश्य मुग्ध नेत्रों से देखने का है। पूजा के प्रसाद स्वरूप कमल के सौरभ से विमोहित होने का आनन्द अपूर्व है। पर मैं नहीं जानता, क्यों मुझ पर यह अनुरोध आया कि मैं पूजा की घंटी बजाऊं, ताकि बाहरी लोगों को पूजा की खबर पहुँचे। मैंने बड़े ही संकोच के साथ इस काम को स्वीकार किया है। मैं जानता हूँ कि मैं साहित्य-रसिक नहीं हूँ; साहित्य-सौध बनाने के लिये जहाँ शिल्पी लोग काम करते हैं वहाँ मुझ सा भाषातत्त्वालोचक (जिसका सम्बन्ध अधिकतया भाषा-सौध की बुनियाद से ही है) अरसिकों में गिना जाता है। खैर, पूजक की भक्ति और निष्ठा सर्वथा प्रशंसनीय है और उसकी पूजा का ढंग हिन्दी कविता-मंदिर में एक नई चीज है। इसलिये दो शब्द कह कर पूजक की सम्मानना और पूजा में अंश-ग्रहण, 'एक पंथ द्वै काज' बना लेना है। मेरे हाथों से घंटी के मधुर स्वर के बदले यदि किसी बेसुरे यंत्र की कर्कश ध्वनि निकलेगी तो इसमें क़सूर मेरा नहीं।

एक अंग्रेज़ी कहावत है कि सूर्य जिस पर प्रकाश डालता है, दुनिया में ऐसी कोई भी वस्तु नई नहीं है। हमारी आधुनिक भारतीय भाषाओं मे गद्य कविता आ चुकी है। अंग्रेज़ी के दृष्टान्त से इस साहित्यिक ढंग का एक नवीन प्रचार भारत की भाषाओं में इस समय हो रहा है। बंगला जैसी कुछ प्रौढ़ भाषाओं मे इसकी प्रतिष्ठा कुछ समय बीते हो चुकी है। पर भारतीय साहित्य में गद्य-कविता वैसे कोई नई वस्तु नहीं है। यह शैली अपने सहज, सरल और अप्रगल्भ, अर्थात् अपने आदिम और स्वाभाविक रूप मे हमारे वैदिक साहित्य में भी दिखलाई देती है। वैदिक गद्य-साहित्य— ब्राह्मण ग्रन्थ तथा आरण्यक और प्राचीन उपनिषदों में—ऐसे बहुत अंश हैं जो सचमुच गद्य-कविता ही हैं। छोटी-छोटी कहानियाँ, प्रार्थनायें और ऐसे अनुभूतिमय विचार हैं जिनमें सत्यद्रष्टा अनुभवी ऋषियों ने दिखाया है कि दिव्यदृष्टि और रसानुभूति की गंगा-यमुना का संगम कैसे हो सकता है। एक-एक महावाक्य कहीं-कहीं एक रसभरी मार्मिक कविता कही जा सकती है। इन प्राचीन संस्कृत गद्य ग्रन्थों में ऐसे बहुत से अंश हैं जो स्वल्प शब्द-मय संक्षिप्त रीति से लिखे होने पर भी सचमुच गद्य-कविता ही हैं; जैसे बृहदारण्यक उपनिषद् के २।४, २।५, ३।८, ५।२, छन्दोग्य उपनिषद् के ३।१, ४।४—१६, कोषितकी उपनिषद् के १।४, ५, २।१, और केन उपनिषद् के १४-२८ अंश। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

[१] इयं पृथिवी

सर्वेषां भूतानां मधु;

अस्यै पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु;

यश्चायमस्यां पृथिव्यां तेजोमयऽमृतमयः पुरुषो,

यश्चायमध्यात्मं शारीरस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषः,

अयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ॥

(बृहदारण्यक, २।५।१)

अर्थात्—

यह पृथिवी,

समस्त प्राणियों के लिये मधु है;

समस्त प्राणी इस पृथ्वी के लिये मधु हैं;

यह तेजोमय अमर पुरुष—जो कि पृथ्वी पर है

यह आध्यात्मिक तेजोमय अमर-पुरुष, जो शरीर में वर्तमान है—

वही वास्तव में यह आत्मा, यह अमृत, यह ब्रह्म और यह सर्व है ॥

---

[२] स वा अयमात्मा

सर्वेषां भूतानामधिपतिः,

सर्वेषां भूतानां राजा;

तद्यथा रथनाभौ च रथनेमौ चाराः सर्वे समर्पिता

एवमेवास्मिन्नात्मनि

सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः

सर्व एत आत्मानः समर्पिताः ॥

(बृहदारण्यक, २।५।१५)

अर्थात्—

वह ही आत्मा

समस्त प्राणियों का अधिपति है,

समस्त प्राणियों का राजा है;
जिस तरह से रथनेमि और रथनाह में सारे आरे निवद्ध रहते हैं,
उसी तरह आत्मा में,
सब वस्तुएँ, सब देव, सब लोक और सब प्राण—
ये सब आत्माएँ समर्पित हैं ॥

यह सब गद्यात्मक कविता, वैदिक छन्दोमय कविता से पृथक् है। ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों की गद्यमयी कविता की यह धारा भारतीय साहित्य से समय पाकर लुप्त हो गई; छन्द के फंदे ने इसकी गति रोक दी। सैकड़ों वर्षों के बाद उत्तर भारत के संतमार्गी अनुभवी कवियों जैसे कबीर, दादू प्रभृति ने भाषा मे अपना प्रत्यक्ष दर्शन प्रकट किया। उनकी अनुपम कविताओं का छन्दः-प्रवाह लक्षणीय है, परन्तु इनके भाव ऐसे गंभीर और महत्त्वपूर्ण हैं कि गद्यानुवाद में भी उन भावों की प्राञ्जलता कम नहीं होती। श्री रवीन्द्रनाथ जैसे साहित्य-सम्राट् द्वारा किये हुए कबीर के कुछ पदों के अंग्रेज़ी अनुवाद ने अंग्रेज़ी भाषा में उनकी अनोखी गद्य-कविता की तान नये रूप में सुना दी।

आधुनिक भारतीय गद्य-काव्य अंग्रेज़ी साहित्य के अनुकरण का फल है। अंग्रेज़ी भाषा में गद्य-काव्य की रीति बाइबिल से आई है। बाइबिल के दो अंशों मे जिसे Old Testament 'क़दीमी शिहादत' अर्थात् 'प्राचीन साक्ष्य' या 'पुराना नियम' कहते हैं, वह मूलतः यहूदी जाति के प्राचीन शास्त्र—पुराण, इतिहास, स्मृति तथा संतवाणी का संग्रह है। यह पुस्तक हिब्रू या इब्रानी भाषा में लिखी

है। इब्रानी भाषा में गद्य का अच्छा विकास हुआ था, पर छन्द-काव्य आदि का विकास नहीं हुआ। चित्त मे भावोद्रेक होने से जब कवित्व का प्रकाश होता तब भाषा में छंद तैयार नहीं रहने के कारण प्राचीन यहूदी कवि और संतलोग गद्य ही से काम लेते थे। किन्तु यह गद्य कुछ ऐसा रूप ग्रहण करता था, जिसे हम गद्य के रूप मे कविता कह सकते है। इस इब्रानी गद्य-कविता में न था अन्त्यानुप्रास या तुक, और न थे परिमित अक्षर। गद्य छन्द किसी प्रकार के वृत्त के अन्तर्गत नहीं था। इब्रानी गद्य-काव्य की एक विशेषता यह थी कि एक पंक्ति मे जो भाव प्रकट किया जाता था दूसरी में किसी न किसी उपाय से उसकी पुनरावृत्ति या प्रतिध्वनि की जाती थी। इसे अङ्गरेज़ी में Parallelism अर्थात् श्लोकार्ध-गत भावसाम्य कहते है। जब अंग्रेजी में इस इब्रानी ग्रन्थ का उल्था किया गया तो अनुवाद को बिलकुल मूलानुसारी रखने की चेष्टा से इब्रानी गद्य-कविता का ढंग अंग्रेज़ी में भी आ गया। साहित्यरसिक तथा जनसाधारण—उभय श्रेणी के अंग्रेज़ों को इस गद्य-कविता का ढंग अपनी भाषा मे बहुत रोचक प्रतीत हुआ। लोगों ने आध्यात्मिक अनुभव तथा उच्च कोटि के काव्य-रसके लिये ही इस ढंग की गद्य-कविता को उपयुक्त समझा। इसलिये पहिले पहल इसका अनुकरण निहायत कम हुआ तथा यह शैली बाइबिल तक ही सीमित रही। ईसवी अष्टादश शतक के द्वितीयार्ध से अंग्रेजी में इसका कुछ अनुकरण दिखाई दिया, जब कि अन्य भाषाओं के काव्य का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया जाने लगा। स्काटलैण्ड की पहाड़ी जाति ('हायलैण्डर्स') जो कि अंग्रेज़ी से बिलकुल भिन्न गैलिक (Gaelic) भाषा बोलती है,—उस जाति

के प्राचीन काव्य-साहित्य का कुछ अंश अंग्रेज़ी के एक साहित्यिक James Macpherson (जेम्स मैक्फर्सन) ने अनुवाद कर प्रकाशित किया। सन् १७६० में इस ग्रन्थ के प्रकाशन के साथ इङ्गलैण्ड और यूरोप में हलचल मच गई। अज्ञात गैलिक साहित्य के ऐसे गद्य-कवितामय प्रकाश से, जो कि बाइबिल की भाषा से स्पर्धा करता था, साहित्य-रसिकों के हृदय में आनन्द की लहरें उमड़ उठीं, यद्यपि डाक्टर जानसन प्रमुख विद्वानों ने विरोधी तान भी छेड़ी कि मैक्फर्सन को असली गैलिक काव्य प्राप्त ही नहीं हुआ—गैलिक जैसी अर्धवर्बर पहाड़ी जाति में इतनी उच्च कोटि का साहित्य नहीं है, और मैक्फर्सन ने ज़रूर बाइबिल से अपनी भाषा और भाव चुराये हैं। खैर, मैक्फर्सन के बाद अंग्रेज़ी के प्रधान मर्मिया कवि विलियम ब्लेक (William Blake) ने—जिनका जीवन-काल सन् १७५७ से १८२७ ईसवी तक था—कुछ पुस्तकें लिखीं जिनमे बाइबिल की गद्य कविता का पूरा अनुकरण है। अमेरिका के कवि Walt Whitman (वाल्ट ह्विटमन—ईसवी १८१६ से १८६२ तक) जिनके सम्बन्ध में बहुत से समालोचकों की राय है कि आप आधुनिक युग के एक श्रेष्ठ कवि हैं, उन्होंने अपनी रचनाओं में इस गद्य-कविता का उपयोग किया है, पर इसमें उन्होंने कुछ नई विशिष्टतायें भी सर्जित कीं।

यूरोप के और देशों के कवि लोगों ने भी गद्य-कविता को अपनी-अपनी भाषाओं में अपनाया, जिनके इतिहास से इस वक्त हमारा काम नहीं।

साहित्यिक दृष्टिकोण से, अंग्रेज़ी बाइबिल पढ़ने काबिल किताब है और तमाम दुनिया के अंग्रेज़ीदाँओं के चित्त पर

वाइविल की भाषा का असर अवश्य ही पड़ा है। श्री रवीन्द्र जैसे कवि ने जब अपनी गीतांजलि और अन्य कविता-ग्रन्थों का अनुवाद अंग्रेजी में किया तब उन्होंने वाइविल की गद्य-कविता की शैली ही का अनुसरण किया। ऐसा करना कठिन भी नहीं; लेकिन अंग्रेज़ों के रोचक भाषा-सौंदर्य और भाषा की झंकार का निर्वाह करना ज़रा मुश्किल है। श्री रवीन्द्रनाथ ने विश्व-सभ्यता की वाहन-रूपी अंग्रेजी भाषा में आश्चर्यजनक कार्य कर दिखलाया है।

अंग्रेज़ी के माध्यम से गद्य-कविता की नई धारा भारत मे प्रवाहित हुई। अंग्रेजी वाइविल सब कोई पढ़ते थे पर श्री रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि और अन्य पुस्तकों से इस गद्य-कविता का ज्यादा प्रचार हुआ। भारतीय भाषाओं में भी यह चीज आने लगी।

कोई पचीस वर्ष पूर्व श्रीयुक्त क्षितिमोहन सेन ने कबीरजी के कुछ अनुभूतिमय पद वंगाक्षर में मूल हिन्दी के साथ वंगला अनुवाद सहित प्रकाशित किये थे। अनुवाद गद्य में ही था। पर क्षितिमोहनजी जैसे सुसाहित्यिक के हाथों मे कबीर के मार्मिक पदों के कवित्व का जोश नहीं घटा। किन्तु वंगला के नये आवेष्टन में मानों वह और बढ़ गया। वंगला भाषा मे वह अनुवाद गद्य-कविता का पहला नमूना बना। गद्य में काव्योच्छ्वासमय दो-चार पुस्तकें, जैसे चन्द्रशेखर मुखुर्ज्या का 'उद्भ्रान्त प्रेम' और हरप्रसाद शास्त्री का 'वाल्मीकिर जय' निकली थीं। पर सचमुच वंगला मे गद्य-कविता के प्रवाह को क्षितिमोहन कृत कबीर के अनुवाद से नई शक्ति मिली।

परन्तु विशेषकर वंगला मे गद्य-कविता का प्रसार अधिक नहीं हुआ। रवीन्द्रनाथ ने अपनी वंगला कविताओं के जो अंग्रेजी अनुवाद किये उनका असर वंगला भाषा पर बहुत ही कम पड़ा,

चाहे बंगाल के बाहर उनका कितना ही असर पड़ा हो। क्षितिमोहन सेन की हिन्दी-बंगला 'कबीर' के आधार पर रवीन्द्रनाथ ने जो A Hundred Poems from Kabir नामक पुस्तक प्रकाशित की, उसने रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित भारतीय ढंगकी गद्य कविता की ओर बहुत से लेखकों और अनुवादकों को आकर्षित किया। पंजाब के एक प्रसिद्ध कवि स्वर्गवासी पूरणसिंह ने अपनी मनोहर पंजाबी कविताओं के तथा सिक्ख 'आदि ग्रन्थ' के कुछ पदों के सुन्दर अनुवाद अंग्रेज़ी गद्य-काव्य के रूप में प्रकाशित किये थे। ('The Sisters of the Spinning Wheel and other Sikh Poems', Original and Translated, by Puran Singh, with an introduction by Ernest and Grace Rhys, 1921, London, J. M. Dent & Sons, Ltd.)। इसके बाद पंजाब के विख्यात कवि भाई वीरसिंह की कविताओं का भी स्वतन्त्र अनुवाद पुस्तकाकार में इन्होंने प्रकाशित किया। ('Unstrung Beads', J. M. Dent & Sons, 1925)। मुझे पूरणसिंहजी की मूल रचना को देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सका, पर इनके अंग्रेज़ी अनुवादों से भी मूल के मनोहारित्व का कुछ आभास मिल सकता है। भारतीय अंग्रेज़ीदाँ साहित्य-रसिकों के लिये पूरणसिंहजी की रचना सर्वथा पठनीय है। श्रीयुक्त तारादत्त गैरोला ने रवीन्द्रनाथ के 'कबीर' के ढंग पर दादू के कुछ पदों का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया है ('Psalms of Dadu', 1926, Theosophical Society, Benares City)। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ के दृष्टान्त से भारतीय साहित्य के अंग्रेज़ी रूप में गद्य-कविता का एक

महत्त्वपूर्ण स्थान हुआ और इसकी प्रतिक्रिया भारतीय भाषा-साहित्यों मे अवश्यम्भावी रूप से दिखाई दी।

कलकत्ता आधुनिक हिन्दी साहित्य का एक पीठस्थान है। कलकत्ते के करीब पन्द्रह लाख बाशिन्दों मे हिन्दी बोलनेवाले जितने हैं, उनकी संख्या से, बगाल की राजधानी होते हुए भी कलकत्ते को सबसे बड़ा हिन्दी-भाषी नगर कह सकते हैं। पर साथ-साथ इसे भी भूलना नहीं चाहिये कि कलकत्ता पाँच करोड़ तीस लाख बंगालियों का साहित्यिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र है। आधुनिक हिन्दी की प्रतिष्ठा तथा प्रसार के काम मे कलकत्ते ने भी अंश-ग्रहण किया था और अभी तक कर रहा है। बंगला साहित्य उन्नतिशील होने के कारण, उसका प्रभाव हिन्दी पर पड़ेगा, इसमे कुछ आश्चर्य नहीं। कलकत्ते के हिन्दी साहित्यिकों में काफ़ी बंगला जाननेवाले और बंगला साहित्य के प्रेमी हैं। बंगला ग्रन्थों के अनुवादों से आधुनिक हिन्दी की सम्कृत-बहुला नई गद्यशैली को बहुत प्रोत्साहन मिला। बहुत से संस्कृत शब्द अनुवाद के रास्ते से आधुनिक हिन्दी में आये और बगला के कई प्रयोग संस्कृत के नियमानुसार अशुद्ध होते हुए भी हिन्दी मे गृहीत हुए।

पडित रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य पर चन्द्रशेखर मुखुर्ज्या के 'उद्भ्रान्त प्रेम' के प्रभाव का वर्णन किया है। रायकृष्णदास प्रमुख कई लेखकों ने हिन्दी मे भावोच्छ्वासमय गद्य-कविता लिखने की धारा प्रवर्तित की। हिन्दी गद्य-कविता-ग्रन्थों में श्री चतुरसेनजी शास्त्री का 'अन्तस्तल' श्री रायकृष्णदासजी की 'साधना' 'प्रवाल' 'छाया-पथ' और श्री वियोगीहरि की 'भावना' और 'अन्तर्नाद' उल्लेख-योग्य हैं। इसके बाद और भी कई लेखकों ने इस दिशा में रचना की

है। यद्यपि वंगला में भिन्न-भिन्न लेखकों की कुछ गद्य-कवितामय पुस्तकें निकली है, तो भी हिन्दी मे इस नई शैली का जितना आदर हुआ, वंगला में उतना नहीं। इस वक्त वंगला के लेखकों में रवीन्द्र-नाथजी द्वारा प्रवर्तित 'गद्य छंद' की चर्चा हो रही है, जिसका ढंग गद्य-कविता के ढंग से बिलकुल निराला है।

आजकल किसी एक देश की संस्कृति और देशों की सस्कृतियों से अलग और स्वतन्त्र रह नहीं सकती। साहित्य के सम्बन्ध में भी यही अवस्था है। प्राचीन यहूदी काव्य, बाइबिल में उसका अंग्रेज़ी अनुवाद, अंग्रेज़ी के और लेखकों द्वारा उस अनुवाद का अनुकरण, वाल्ट ह्विटमान जैसे कवि के हाथों में इस ढंग का नया रूप-ग्रहण, ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थों की गद्य-कविता का रवीन्द्र-नाथ पर कुछ प्रभाव, रवीन्द्रनाथ के अंग्रेज़ी अनुवादों में इसका प्रयोग, वंगला गद्य-कविता की नई शैली—इतने विचित्र साहित्य-सूत्र हिन्दी गद्य-कविता के वस्त्र में दीखते हैं।

प्रस्तुत गद्य-कविता की पुस्तक हिन्दी साहित्योद्यान में नवतम पुष्प है। इसकी सुषमा, इसके वर्ण और सौरभ अवश्य ही साहित्य-प्रेमियों को विमोहित करेंगे। पुस्तक के नये भाव अपनी चमकीली और सुरीली भाषा की झलक और झंकार के साथ हिन्दी के लिये अनोखी वस्तु है। सौन्दर्याधार प्रकृति अनुभवी चित्त पर कैसे अपना प्रभाव डालती है, इसे नई तौर पर 'वेदना' के कवि ने दिखाया है। बेशक इनकी कुछ कविताओं में रवीन्द्रनाथजी की शैली की प्रतिध्वनि मिलती है; पर आजकल भारतवर्ष में अनुभवी या रहस्यवादी कविता-पुष्प का मुकुलित होना रवि के प्रकाश बिना कैसे हो सकता ? इन कविताओं की अनुभूतियाँ तथा अभिव्यक्ति निहायत आधुनिक

रीति की हैं; इसलिये मेरा निश्चय है कि इन कविताओं का आवेदन आधुनिक युग के शिक्षित लोगों के लिये सार्वजनीन होगा।

मुझे श्री भँवरमलजी सिंघी की रचना अच्छी लगी है। भँवरमलजी राजस्थान के रहनेवाले हैं और मैं बंगाली हूँ। राष्ट्र-भाषा हिन्दी मे लिखा हुआ साहित्य भारत के पश्चिमी तथा पूर्वीय प्रान्तों को एक सूत्र मे संग्रथित करता है। मैं आशा करता हूँ कि सारे हिन्दी संसार मे इन कविताओं का आदर होगा। इति शम्।

वैशाखी पूर्णिमा, संवत् १९९४

'सुधर्मा' सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या

१६ हिन्दुस्थान पार्क, बालीगंज, कलकत्ता

कुछ शब्द

काव्य मैं क्या जानता हूँ ? पर प्रेम का अधिकार निर्दय होता है। वह प्रेम पराई त्रुटियों को नहीं देखता। भाई भँवरमल सिंघी ने मेरे अधिकार को नहीं देखा और कहा कि उनकी इस पुस्तक के लिये मैं कुछ शब्द लिख दूँ।

लिख तो मैं दूँ, पर क्या लिखूँ ? कवि मैं नहीं, कविता का रसज्ञ भी नहीं। हाँ, उस रस का लोभी हूँ। लोभी अल्प-सामर्थ्य होता है। कविता के विषय में रस-लाभ की शक्ति मेरी स्वल्प है। स्वल्प है, तभी उसकी क़ीमत मैं बहुत लगाता हूँ। मेरे लेखे काव्यरस दुर्लभ है, सुलभ वह नहीं है। उस रस में संजीवन होता है। उससे स्वास्थ्य, बल और आयु बढ़ती है।

पर अमृत विष होता दीखे तो ? तो मैं कहूंगा कि या तो पहचान में भूल हुई, नहीं तो रोग कहीं हम में ही है। अमृत को अनुपयोगी नहीं कहना होगा। उसकी उपयोगिता, हां, इतनी अधिक अवश्य है कि हम उसके अनुपान की मात्रा भूल जाते हैं। उससे स्वास्थ्य नहीं, नशा लेते हैं और जीवन की जगह मौत बुलाते हैं। आज मानव को उस आसक्ति-दोष के लिये क्या कहा जाय ?

तभी तो कर्मण्य पुकारता है—'देश मे आग लगी है तब मुंह पर काव्य-रस की बात लाते लजाते क्यों नहीं हो ? धिक् है ऐसे काव्य-रस को। छीन फेंको कवि की बाँसुरी, ले चलो उसे अपनी टोली के साथ और बोलो कर्म की जय !'

उस कर्मठ के उत्साह की निन्दा न होगी। पर जिस आग की वह बात करता है उसको मैं ठीक तरह जानता नहीं। पर एक आग को जानता हूँ। वह आग मानव के भीतर आदि दिन से जल रही है; अब तक नहीं बुझी, नहीं बुझी। मट्टी उस पर डालते ही तो डालो, वह नहीं बुझेगी, नहीं बुझेगी। वह बुझने के लिये नहीं है। वह जलाए रखने के लिये है। उसमें जलना स्वीकार करना ही एक उपाय है। महापुरुष हो गए हैं जिन्होंने उस आग को प्रसादरूप में ग्रहण किया और कृतार्थ भाव से ऐसे जले कि ज्योति हो गये। पर उस जलन की ताप को क्या हर कोई सह सकता है? कवि ने उस जलन को स्वीकार किया है, पर तपिश उसके झेले झिल नहीं रही है। वह कमज़ोर है, पर हारेगा वह नहीं। आग को निष्प्रभ नहीं वह होने देगा। तब वह आग की उस तपन को सहने के लिए अपनी पीड़ा में बाँसुरी ओठ से लगा उठता है, या कि गाता है—तो मेरे कर्मठ भाई, उसे वर्ज्जन-तर्ज्जन करने आगे न बढ़ो। वह दुखिया है। दुःख से अधिक पवित्र वस्तु इस जगत् मे क्या है? वह दुखिया इस जगत् का क्या बिगाड़ करेगा? बिगाड़ क्यों करेगा? वह क्या सबके प्रति प्रार्थी नहीं है? और क्या सच्चा दुःख सुधार के अतिरिक्त कुछ भी और कर सकता है? और मेरे कर्मठ भाई, तनिक रुक कर सुन ही न लो कि वह बाँसुरी कह क्या रही है। शायद हो कि वह एक दम बुरी बात न हो। शायद हो कि वह मनको तुम्हारे भी छुए।

हम-तुम वियोग की चिंगारी और सयोग का स्वप्न लेकर यहाँ आ पड़े है। आकर दोनों की प्रेरणा से आगे चलते जा रहे हैं। यह आकाश क्या है? जगमग करते ये नक्षत्र क्या हैं? सूरज

और चांद और बादल और धूप क्या है ? शून्य पट पर यह सब चित्र-विचित्र लेखा क्या है ? क्या हम सब एक नहीं हैं ? फिर हम अलग क्यों हैं ? मैं इन सबका कौन हूँ ? ये मेरे कौन हैं ? ओ इस विश्व-परिवार के अधिष्ठाता, तेरी गोद कहाँ है और जहाँ मैं छिटका हुआ पड़ा हूँ वह भी क्या तेरी ही गोद नहीं है ? समस्त के प्रति अपना वियोग अनुभव करता हुआ चिरकाल से मानव उस सम्पूर्ण के प्रति संयोग की कामना करता रहा है। नाना रूप और रिश्तों मे उसने सबको अपने भीतर लिया और सबके प्रति अपने को दिया है। विराट् के प्रति उसका आह्वान कभी चुप नहीं हुआ। इस या उस उपलक्ष से वह पुकारता विराट् को ही रहा है। नाना छन्दों में उसकी वह पुकार मुखरित हुई है और मानव-वाणी युग-युग में उस पुकार से धन्य हुई है।

प्रस्तुत गद्यगीत कुछ हों, कुछ न हों; मुझे प्रतीत हुआ है कि उनके सम्बोधन का लक्ष्य उसी ओर है। उपलक्ष्य कहीं भी हो, लक्ष्य मे चूक नहीं है। उसमें उसी अपरिमेय की खोज है, चाह है, जिसके स्पर्श से क्षण भी अनन्त और बिंदु भी अथाह बनता है।

और मैं क्या कहूँ ? यही इच्छा प्रगट कर सकता हूँ कि हममे से प्रत्येक के साथ यह साधना उत्तरोत्तर अधिक गम्भीर और अधिक प्रेरक हो।

७, दरियागंज दिल्ली	}	जैनेन्द्रकुमार जैन १६।६।३७

मैं कवि नहीं हूँ, पर स्मृतियों के रंग विलास पर अश्रुओं का प्रवाह काव्य की आड़ी टेढ़ी रेखाएँ खींचता है।

मुझे कुछ लिखना नहीं है, पर जिसने संगीत का दान देकर मुझे हर लिया है, उसके द्वार पर ये विखरे हुए फूल रख देने हैं।

मैं कलाकार नहीं हूँ, पर जल का वह स्रोत हूँ जिसमें उसका अनन्त प्रवाह है, अनन्त लहरें!

मैं लेखक नहीं हूँ, केवल वह बाँसुरी हूँ जिसमें 'उसका' स्वर भरा है!

यह कविता नहीं है, केवल वेदना की वह डलिया जिसमें मैंने उसी का दान सिमटा कर रखा है, उसी की दी हुई मधुकरियाँ भरी हैं।

—लेखक

यात्री, मेरे द्वार पर खड़े न हो, मेरे संसार का नाम न पूछो; उसमें वेदना का साम्राज्य है जिसमें सैकड़ों कलियाँ बिखर चुकीं, सहस्रों पुष्प कुम्हला चुके !

तुम वहां न आओ और मेरे आनन्द का कारण न पूछो ! मेरा तो वही है सब कुछ !

लोल लहरों में विकम्पित कल्पना की मधुरिमा क्या है ?

जीवन की सरस साधना की प्रेरणा क्या है ?

मेरे कवि का विलास क्या है—उसकी समाधि क्या ?

कवि के किन नयनों में इस अनन्त सौन्दर्य की दृष्टि है—क्या है इस समर्पण का रहस्य ?

वेदना !

इसके बिना जीवन क्या—जीवन का सौन्दर्य ?

वेदना-शून्य प्रेम क्या अमर हो सकेगा ?

वेदना-रहित जीवन में क्या उसका कवित्वमय पक्ष स्थिर रह सकेगा ?

प्रेम-वेदना के अभाव में क्या आत्मा के दर्शन हो सकेंगे ?

वेदना-हीन वीणा के तारों मे क्या वही झंकार सुनाई देगी ?

अनन्त-जलराशि मे—वीचियों की क्रीड़ास्थली मे—अब भी क्या वही सौन्दर्य मिल सकेगा ?

चमक-चमक कर रह जानेवाले विद्युत् में, हिलहिल जाने वाली लजीली कलियों के नर्तन में, छिप-छिप जानेवाले सूर्य की अरुण आभा में, पृथ्वी के करुणा भरे क्षितिज-मिलन में—क्या वही मुग्धता, वही सहृदयता रह सकेगी ?

पिघल-पिघल जानेवाले तरुण वृक्षावलम्बी नीहार-बिन्दु में, रह-रह कर स्मृति-गह्वर में गूँज जानेवाली बालस्मृतियों में, उड़-उड़ जानेवाली सुकुमार कल्पनाओं में—वेदनाहीन नेत्रों को क्या दिखाई देगा ?

वेदना-हीन राग मुझे अच्छा नहीं लगता, वेदना-शून्य कवित्व मुझे नहीं रुचता, वेदना-हीन जीवन मुझे नहीं भाता।

मुझ से बार-बार पूछा जाता है कि मैं किस की पूजा करता हूँ ?

तुम उत्तर क्यों नहीं देते, मैं इसका क्या जवाब दूँ ?

सुरभित पवन ! तुम्हारी मातल थपेड़ों से मुझे चैन की नींद सी आती है, क्या मैं तुम्हारी पूजा करूँ ?

चन्द्रिका-चर्चित आकाश ! मेरी अशान्ति की कल्पनायें तुम्हारे अनन्त जीवन मे जाकर भरती हैं, इसलिये क्या तुम पूज्य हो ?

वेदना ! तेरी गोदी में जीवन की चिर तमन्ना भरी है, तो क्या अपनी काव्य-पूजा तुझे ही अर्पित कर दूँ ?

पर,

तुम सब भी क्या हो, किसकी पूजा के पुष्प ? किस व्योम-प्रकाश के जुगनू ?

—और क्या मैं भी इसी अखण्ड ज्योति की अर्चा हूँ ?

कितने दिनों से तुम आँखमिचौनी खेलते हो ?

तुमने मुझे अपना प्रेम देकर भी अलग ही रखा; यह प्रेम कैसा ?

बिराट् सौन्दर्य में दीख कर भी तुमने अपना असली स्वरूप प्रकट नहीं किया; यह दर्शन कैसा ? -

मेरे सजल नेत्रों में रम कर भी तुम मेरे न हो सके; यह मिलन कैसा ?

मायावी ! संसार ने तेरा आदि और अंत यही देखा !

स्नेह की अंगड़ाई में मैंने तुझे क्या का क्या पाया ?

तेरी यह आंख मिचौनी !!

अनन्त वर्षों से साधना करता हुआ, निर्जन वनस्थली में घूम-घूम कर बहता हुआ नाला किसकी मूक आराधना में व्यस्त है ?

किसी सुदूर पर्वत के एकान्त शिखर पर विकसित हुआ गुलाब का फूल किसकी आँखों को अपना कलात्मक सौन्दर्य प्रदान करता है ?

घोर अन्धकार-पूर्ण रजनी के तमिस्र पटल पर झिल-मिलाता हुआ लघु आकाश-दीप अपने इस छोटे से प्रकाश से किसकी हित साधना करता है ?

किसी प्राचीन स्थान के आसपास में पड़े हुए प्रस्तर खण्ड में कितने युगों का इतिहास भरा है ? वर्षों से वह जो सृष्टि के जन्म-मरण की कहानी कह रहा है—उसको कौन समझता है ?

हृदय के स्पन्दन में इन प्रश्नों की ध्वनि बार-बार सुनाई देती है ! कल्पनाओं की सहायता पाकर भी मैं केवल इतना ही समझ सका हूँ कि यह तो साधना की थाली में प्रेम की पूजा है !

सौन्दर्य की अमर निधि यमुना में नाच-नाच, गा-गा उठनेवाली लहरें जब हृदय का संगीत ले-ले झूमती हैं—तभी तो मनुष्य यह जानने लगता है कि मानवता सौन्दर्य की पूजा है !

स्वप्नों की माला पहने सोयी हुई चिरवेदना जब बिखरी हुई स्मृतियों के गीत गाने लगती है, तभी तो देव ! मनुष्य को मालूम होता है कि वह जी रहा है !

नीरस बादलों की ओट में से निकलते हुए चन्द्रमा की तरह सोये हुए नैराश्य में भूली हुई चेतनता जब अपलक हृदयाकाश में अपनी ज्ञान-ज्योत्स्ना छितरा देती है, तभी तो देव ! मनुष्य यह समझने लगता है कि जीवन आशा और निराशा के द्वन्द्व की एक लंबी कहानी है !

चिरस्नेह के साथ झालर की तरह झूलती हुई कल्पना भी जब नैराश्य की अग्नि में जल उठती है, तभी तो मनुष्य मानवता का नग्न रूप पहचानने लगता है। कल्पना के पंख टूट जाने पर मनुष्य कितना छोटा, कितना निर्बल दिखाई देता है ?

हे जीवन के आलोक ! बढ़ती हुई मानवता के पथ में अपना प्रकाश फैला दे !
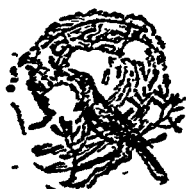
तू आना चाहता है, पर किस लिये, रे हृदय के मोती !

यहाँ कौन पारखी है, जो तेरी आब को पहचानेगा ?

कौन रसिक है, जो तेरी कविता समझेगा ?

कौन मतवाला है, जो तेरा जीवन पीवेगा ?

आँखों में आकर तू क्यों छितरा है ? इस सौन्दर्य की महिमा किस गायक की वीणा में उतरी है ?

किसको अन्दाज है कि तेरी आभा में कितने सूर्य चमकते हैं, कितने चन्द्रों की शीतलता !

तू तो वहीं रह, जहाँ रह कर यह चमक पाई, जहाँ रह कर तू ने जीवन का विलास भरा, दिया और छितराया !

मेरे मोती, आना तो तब, जब तुझे किसी हार में पिरोने की चाह हो !

छिपते-छिपते भी रुक जानेवाला और रुक-रुक कर भी छिप जानेवाला सूर्य जब किसी गोधूलीपूर्ण संध्या की झोली में अपनी अरुण स्मृतियाँ भर कर, उसके कण्ठ में अपने समस्त अनुरागमय जीवन की रागिनी भर कर, दिन भर की अपनी वेदना को अपने ही में लीन करके—किसी अज्ञात स्मृति की प्रेरणा से विराम के पड़दे में छिप जाता है; तब मुझे वह कवि याद आता है जो वेदना को कल्पनाओं में छिपा कर आप ही लिखता है, आप ही पढ़ता है, आप ही गाता है, आप ही जलता है, पर औरों को भी शीतल कर देता है!

परम तपस्वी सूर्य! सारी अग्नि को अपने ही हृदय में धरे हुए—जल-जल कर भी जीते हुए—तुम संसार को जीवन-दान करने में कैसे व्यस्त हो! तुमने कर्त्तव्य का कितना ऊँचा पाठ सीखा है? केवल तुम जब छिप जाते हो तो मैं पूछता हूँ—

'सूर्य! तुम्हारा कर्त्तव्य कहाँ गया?'

चन्द्र हँस कर उत्तर देता है—'मैं भी तो उसीकी शक्ति का दूसरा रूप हूँ!'

आशा के सूत्र में बँधी हुई कल्पनाओं की भूमि पर नाचती हुई मेरी कामनाएँ किसी विदग्ध ज्वालामुखी के विस्फोट की तरह टूट क्यों नहीं जाती ? उनके रुके रहने में क्या रहस्य है ? क्या जादू है उनकी प्रेरणाओं में ? क्यों हृदय उनके पीछे बँधा-बंधा दासत्व की शृङ्खलाओं मे जकड़ा है ? कौन कहता है कि जीवन का विकास कामनाओं की प्रेरणा में सन्निहित है ? क्या, यह जड विकास ही जीवन का अन्त है ?

देव ! मेरे विचारों में यह भूकम्प क्या है ? अरे, ओ जीवन के भूकम्प, हिला-हिला कर ही क्यों रह जाते हो ? विस्फोट की तरह क्यों नहीं टूट जाते ? अपनी लपटों से इसे क्यों नहीं भस्मीभूत कर देते ? क्यों नहीं टूट निकलते, हे मेरे स्वप्नों के विस्फोट ?

इस जड़-जीवन के लिये मुझे नहीं जीना है; नहीं जीना है मुझे इस बन्धन के लिये ! मुझे तो विस्फोट की वही अग्नि चाहिये—जीवन के अन्तर की वह ज्वाला चाहिये जिसकी राख से बनी हुई उर्वरा भूमि मे अनुभूति सत्यमय और ज्ञान प्रकाशमय हो सके।

नौ

केवल एक रहस्य ही तो !

हम जिसे अन्धकार कहते हैं, न मालूम वह किस महा-सुन्दर की चिर छाया है ?

जिन्हें हम नक्षत्र और तारे मानते हैं, वे न जाने किन नयनों की निमिषें हैं ?

जिन्हें हम जल और वायु मानते हैं, वे न जाने किस हृदय के आँसू और उच्छ्वास हैं ?

मिट्टी कह कर हम जिसका तिरस्कार करते हैं, उसमें न जाने कितनी कोमल पंखुड़ियों का यौवन-पराग लुण्ठित हुआ है ?

जिसको हम महासागर कहते हैं, वह न जाने किस स्वप्नलीन का तरंगित हृदय है ?

केवल एक रहस्य ही तो !

वायु से बातें करती हुई ओ सरिता की लहर ! तू किसका संदेश लेकर पागल बनी-बनी बहती है ! अपनी छाती पर किसकी नौका को लेकर किस ओर बह रही है, हे तरंग-बाला ! क्या तू किसी दिव्य प्रेमी की आँखों की अश्रुधारा है या है उसकी मिलन—चन्द्रिका में बहती हुई सुधा-धारा ?

मैं तेरी गीतिकाएँ कैसे समझूँ, कैसे समझूँ तेरे अनुपम सौन्दर्य का रस-विलास ? मैं तेरे उद्गम को कैसे ढूँढू और कैसे पाऊँ तेरी गहराई को ? मैं तेरी गति को कैसे पाऊ – कैसे समझूँ तेरी वेदना को ?

तेरे संगीत मे अमरता किसने घोली—किसने भेजा तुझे सागर के वक्षस्थल पर ? तेरे से चन्द्रिका की मैत्री किसने कराई—किसने दिया तुझे यह स्वर्गीय सौन्दर्य ? तुझे किसने बहाया—किसके लिये तू बह उठी ? कल्पनाओं के पात्र में किसकी स्मृतियों के जलते दीपक लिये तू किस ओर बह रही है, हे वीचि ! तेरे गीतों में मस्ती किसने भरी है—किसने भरा है तेरे चलने में चापल्य ?

क्या यह बहना ही तेरे जीवन का लक्ष्य है और है उसको पूरा करने की साध ?

हे जीवन-वीचि ! समुद्र मे जाकर भी उसकी अन्तर्दाह में खेलती हुई तरंगावली को तो देख !

मुझे कुछ न चाहिये, केवल अपना कह कर प्यार कर लो!

काली घटाएँ उमड़ी हैं, मुझे कुछ न चाहिये; एक बार हँस कर मार्ग बता दो।

स्नेह के बोझ से झुका हुआ आकाश आँसुओं से पृथ्वी का स्नेहालिंगन कर रहा है; उन आँसुओं पर पृथ्वी का गर्व? पर आँसू की वह वेदना तो समझा दो जिसमें इस गर्व की अनुभूति!

कौन कहता है कि तुम्हारे साथ रह कर मैं स्वर्ग चाहता हूँ?

—केवल जीवन की इस तरल ज्योति में चमक उठो!

बस, मुझे कुछ न चाहिये!

मुझे वह दिन याद है, जब मैं तुम्हें नहीं जानता था!

जब मैं उस आलोक में पड़ा था, जो अन्धकार के साथ नहीं रहता;

जब मैं ममत्व की उस गोदी में पड़ा था, जिसमें विछोह नहीं होता;

जब मैं दूध की उस फेनिल धारा पर जीता था, जिसमें मीठे की जरूरत नहीं होती;

जब मैं उस गान में झूमता था, जिसमें क्षोभहीन प्रेम की मंजुल काकली थी,

मुझे वह दिन याद है जब मैं तुम्हें नहीं जानता था।

हृदय, अब तुम क्या करोगे ?

जिसके उत्तर पाने की प्रतीक्षा में तुम पागल हो रहे थे,

सतृष्ण आँखें फाड़-फाड़ कर जिसको देख रहे थे,

सरिता के कल-कल स्वर में, वृक्षों की झुरमुराहट में, विहङ्गों की चह-चह में, पुष्पों के सौरभ में और तारिकाओं के स्मित में जिसे ढूँढा करते थे और जिसके न मिलने से रोया करते थे,

जिसका नाम सुनते ही उछल पड़ते थे,

जिसके लिए आँखों में उन्माद था, जिसके स्वागत के लिये जन्म से अभ्यास कर रहे थे, जिसके मिलन की आशा में स्वप्नों के चित्र बना रहे थे, संसार के उपहास की परवाह न कर जिसके लिए पागल बने फिरते थे,

उसका उत्तर तो मिल गया ! उसको तेरी इस व्यथा की कितनी परवाह है, इसका भी तू ने कभी अनुमान किया है ? वह कहता है—अवकाश नहीं !! एक ही क्षण में सारी आशाएँ चूर-चूर हो गईं !!!

हृदय, अब तुम क्या करोगे ?

रात आधी बीत चुकी थी, मैं सपनों की गोदी में आँसू छिपाये रुका था, तुम्हारे आने ने मेरी सम्पत्ति का रहस्य खोल दिया।

मुझ से मिल कर तुम मेरी इस थाती को लूट न लेना! मुझे सोने दो या बिल्कुल जागृत कर दो, हे प्रियतम! यह सुषुप्त जागृति कैसी ?

यदि मैं जागृत न हूँ तो भी कोई परवाह नहीं, क्योंकि सपनों में भी मैं तो तुम्हारा ही प्रणयगान सुनता हूँ—प्रणय-लीला देखता हूँ!

यदि मैं जागृत ही रहूँ तो भी ठीक, क्योंकि मैं तो तुम्हारी ही ज्योति देखता हूँ!

मुझे सोने दो या बिल्कुल जागृत करदो, हे प्रियतम!

उस दिन उगते हुए सूर्य को देख कर मेरे हृदय में आशा की एक किरण फूट पड़ी—सारे शरीर में एक प्रकार का मधुर प्रकाश विकीर्ण होते हुए दिखाई दिया। बढ़ते हुए उस प्रकाश में मैं कामनाओं का भवन तो निर्माण कर सका, पर उनमें जीवन का दीपक नहीं जला सका। आशा की उन प्रकाश रश्मियों द्वारा मुझे विस्मृतियों का साम्राज्य ही मिला; जीवन के संगीत को अमर बनानेवाली स्मृतियाँ तो अन्धकार में ही लीन होती गईं।

जीवन-सरिता में मैं कल्पना-वीचियों का नृत्य तो देख सका, किन्तु स्मृतियों की आँखों से देखे जाने वाला वेदना का सौन्दर्य आँखों से ओझल हो गया। अपने चारों ओर मुझे 'प्रकाश' तो फैला हुआ दीखता है—परन्तु अपने अन्तर में तुम्हारी ज्योति को देख लेने वाले नेत्र बन्द हो रहे हैं।

देव! यह कैसा प्रकाश है जिसमें केवल प्रकाश ही प्रकाश तो दिखाई देता है, पर तुम्हारी ज्योति का दर्शन नहीं होता। मुझे तो वही अन्धकारमय स्मृतियाँ चाहिये जिनसे मैं तुम्हें पा सकूँ।

उसके स्नेह के गीत सुन कर परिचय की उत्कण्ठा थी, आशा के मादक विलास में जीवन की उल्लासिता थी, मदिर मदिर !

उस दिन उससे परिचय हुआ था, नव कुसुमित जीवन की पंकिल कलियों पर; मधुप-निकर के अभिगुंजन-गान में; उघड़ती—महकती वेदना के मञ्जुल विलास में !

परिचय का प्रभात था—आलोक का प्रसरण ! मैंने उसी दिन प्रिय के स्नेह-विहान मे वह किरणासव घोला था, वह राग अलापी थी कि हम दोनों के जीवन मे उसी दिन से एक ही गान, एक ही उन्मन, एक ही मूर्च्छना बसी है। वह परिचय था या परिणय !

आज भी जीवन के प्रागण मे प्रभात होता है, प्रभात की लालिमा ! वह उन्मन, वह मूर्च्छना ? प्रिय का वह मंजुल जीवन, मेरा उसमे घुल-घुल पड़ना, और फिर होना वह मधुर-मधुर मिलन-संगीत, स्नेह की सपनिल गाथा ?

वह परिणय था, यह परिचय रह गया !

मैं वासना के संसार में घूमता था, जिसको लोग आनन्द कहते हैं!

आकांक्षा के पंखों पर उड़ता था, जिसको लोग साहस कहते हैं!

प्रवञ्चना की तरंगों में झूमता था, जिसको लोग संपन्नता कहते हैं!

कीर्ति के कमल पर मँडराता था, जिसको लोग त्याग कहते हैं!

पर आज तो क्रम उलटा है—

मुझ में आनन्द की खुमारी है, लोग जिसको पागलपन कहते हैं!

मुझ में जीवन का साहस है, लोग जिसे हताशा कहते हैं!

मैं आत्मसंपन्न हूँ, लोग जिसको ज्ञान-गर्व कहते हैं!

मुझे भूख नहीं रही, लोग जिसको भय कहते हैं।

मैं वहाँ घूमता हूँ, जहाँ क्रम उलटा है!

मेरी साधना का स्वरूप क्या है ?

मेरा लक्ष्य क्या है—साधना किसकी ?

तुम और मैं दोनों एक ही प्रवाह के तो दो किनारे हैं—एक ही आलाप की मूर्च्छना हैं !

जब तुम्हारे और मेरे अधर एक ही रस में पड़े हैं, तो प्रेम किसका, किसकी साधना ?

तुम और मैं तो एक ही नशे का चढ़ना उतरना हैं—एक ही स्वरूप का विराट् और सूक्ष्म प्रदर्शन !

मेरी साधना का स्वरूप क्या है ?

सुख-दुख के इस छलछलाते प्याले में परिवर्तन की लहरें कैसे रोकेगा, हे उन्मत्त हृदय !

पूछ, उस प्याले से पूछ ! उस प्याले को अपनी स्मृतियों के करों से पकड़ कर अपनी अभिलाषा के अधरों पर रख झूमझूम कर पीनेवाले रस-विभोर जीवन-प्रेमी से पूछ—जीवन की रंगभूमि में कितनी बड़ी साधना की आवश्यकता है, इस प्याले को पीने के लिये ?

तू इसकी लहरियों को स्थिर कर लेना चाहता है ! क्या मिलेगा तुझे इस स्थिरता में ? अरे, यह प्रकम्पन तो देख ! इसी में जीवन-मदिरा की वह खुमारी है, जिससे हम जीते हैं, हमारा हृदय जीता है; वृक्ष झूमता है, कलियाँ गाती हैं; लहरें नाचती हैं, जुगनू चमकते हैं !

जीवन की इस मदिरा को पीकर तो देख—जीवन क्या है, जीवन का जीना क्या है ? जीवन में भावना क्या है ? भावना में जीवन क्या ?

हे जीवन के देवता ! मैं तो जीवन चाहता हूँ ! यह मदिरा का जीवन स्वयं वह जीवन है !

तेरे अनन्त कष्टों की साधना बन कर, तेरी चिर काम-नाओं का केन्द्र बन कर, तेरी निर्बन्ध आशाओं का अमृत-बिन्दु बन कर, माँ, तेरे कल्पना-लोक की एकाकी अभिलाषा बन कर मैं यहाँ चला आया। न मालूम किस अज्ञात हृदय ने तेरी वेदना के मर्म को समझा-समझ कर न मालूम किन अज्ञात करों से उसने मुझे तेरी गोदी मे फेंक दिया। तूने सौ सौ हाथ फैला कर मुझे अपनी छाती से लगा लिया—अपरिमित साधना के इस रत्न को तूने अपनी पलकों में बसा लिया। अपने आनन्दाश्रु से माँ, तूने मेरे क्रीड़ा-चापल्य को अमृतमय बना दिया।

मुझसे इतना प्रेम क्यों है, माँ ?

तेरे कष्टों की इतिश्री नहीं हुई थी माँ, पर फिर भी तू मुझमे, मेरी बालक्रीडाओं में इतनी लीन हुई कि सब कुछ भूल गई। मैं तेरी गोदी में पड़ा-पड़ा दूध पीता, तू मेरी ओर एकटक से देखती रहती। मैं ऊधम करता, तू धमका देती; मैं एक बार चुप होकर फिर हस देता, तू चट बलैया ले लेती। वात्सल्य का श्रोत उमड पड़ता! वह तेरा चूमना—वह मेरा झूमना!

माँ, उन दिनों की स्मृतियाँ ही वात्सल्य भर-भर लाती हैं, उस दिन से भी ज्यादा माँ, आज मेरा सिर तेरे कोमल

वरद हाथों का आश्रय चाहता है। अव्यक्त वेदना आज भी तेरी गोदी में रो लेना चाहती है। जटिल जीवन की अग्नि में जलता हुआ मैं एक बार तेरे वात्सल्य-रत्नाकर में डूब जाना चाहता हूँ—और यदि उसकी लहरों में अपने को मिला पाऊँ?

माँ, ऐसा वर दे कि मैं उस वात्सल्य-सागर की एक लहर बन गीत गाने लगूँ! मैं गा गा कर पागल बन जाऊँ, तू सुन सुन कर झूमने लगे!

आभा देकर उसने मुझे लुभा लिया !

स्नेह की पहली बौछार पर मैंने अपने को भुला दिया ! मैं तो जीवन-किसान की वह कामना हूँ जिसमें वर्षा की बूँद-बूँद पर जीवन का गान होता है, गान-गान मे उसकी साधना का मसृण भरा है !

सजल-नीलिमा में उसने मेरी मौन प्रतीक्षा का धन बटोर लिया—बटोर लिया और फिर चल दिया। यह बात किससे कहूँ ?

आभा देकर ही उसने मुझे लुभा लिया।

मैं क्या हूँ ?

मैं तो उदधि-वक्ष की वह तरंग हूँ जो नाविक की पतवार से रात-दिन कटती रहती है।

मेरा लक्ष्य क्या ?

मैं तो उस पथ का राहगीर हूँ, जिसका न कोई आदि है, न अन्त। मुझे लंबा रास्ता तय करना है! तुम मेरी कठिन यात्रा पर क्यों दया करते हो ? मेरा तो यही मधुर जीवन है!

मैं क्या हूँ ?

मैं तो चिर-प्रज्ज्वलित वियोगाग्नि का वह स्फुलिंग हूँ—जलना ही जिसका जीवन है।

मैंने अपने ही हाथों से चुन-चुन कर फूलों की एक माला तैयार की। उसकी सुरभि से—उसके मादक सौन्दर्य ने उनके प्रेम को जीतने की सहस्र कल्पनाओं के परों पर उड़ कर मैं उनके सामने जा खड़ी हुई! उन्होंने मेरी ओर देखा, मैं तो इसके पहले ही लज्जा से गड़ गई। जिस साहस के साथ माला पिरोकर मैं उनके गले में पहराने को गई थी, वह तो लज्जा में डूब गया!

उन्होंने मेरे हाथों में से माला लेली—उसको चूम कर मेरी माला मेरे ही गले में डाल दी, तब मैंने उनको देखने की चेष्टा की, पर वे तो पहले ही गायब हो गये। अपनी लज्जा के क्षोभ से मैं फिर गड़ गई।

अपनी ही बनाई वह माला आज मेरे जीवन की माला है—और प्रियतम के प्रेम का व्याकुल धैर्य।

मैं क्या होता ?

यदि नीलिमा के वक्ष पर अनन्त रात्रियों में चमक कर एक दिन तिरोहित होता हुआ तारा होता, तो भी मैं कहता, मैं क्या होता ?

किसी सफल भावुक की जीवन-मदिरा से लबालब भरा हुआ प्याला होकर प्रिय के अधरों से लग कर भी मैं न भूलता—मैं क्या होता ?

कलियों के यौवन में पसीजा हुआ उन्माद होकर भी मै पूछता—मैं क्या होता ?

यह नहीं और वह होकर भी मैं पूछता कि मैं क्या होता ?

चन्द्र ! तुम उस समय मुस्कुराना, जब मैं उसके सपनों मे अश्रु-मोतियों की वन्दनवार सजाऊ !

वायु ! तुम उस समय खेलना, जब मैं किनारे की तरफ दौड़ती हुई लहर होऊँ !

सूर्य ! तुम तब प्रकाशित होना, जब मेरी भाव-दूर्वा पर बैठी हुई नीहार-कणिकायें अपना सारा साज सज लें।

सूर्य-चन्द्र ! तुम उस समय तपना, जब मैं तुम्हारे साथ हो सकूँ !

ज्ञान-व्योम की झिरमिर झिरमिर में जब मेरी स्नेह-कोकिला कूजती है—कूजती है और प्रेम का तत्व चिरन्तन-ज्योति में भरा बता कर पंख फड़फड़ाती है, उस समय तू मेरे पास क्यों नहीं आता ?

—"मेरा आना तो अपना आना है, ज्ञान-पंखों की फड़फड़ाहट नहीं चाहिये ।"

इस अ-कवि हृदय की मूक आह पर रीझ कर, तूने मेरी विहान-भैरवी को इस तरह ठुकरा दिया—स्वाति-प्रेमी पपीहा जिस तरह लबालब भरे जलाशय को ?

—"यह आह ही असली स्नेह-रागिनी का स्वर-संचय है, इसमें प्रेमाभिमान की भैरवी नहीं है ।"

पुजारी की रंग-बिरंगी, पीताम्बरी पूजा तुझे आकृष्ट न कर सकी—आकृष्ट न कर सकी वह संगीत-पूजा की महफिल ?

—"यह तो भक्ति का व्यापार है, चिरस्नेह—मलय संसगित रागिनी तो निद्रित है ।"

मेरी इस दीर्घ-पिपासा पर कुछ भी तो दया हो ! कृषक की डब-डबाई हुई आँखों के इस रोदन में ही क्या है ?

—"इस ज्योति-विलसित रोदन में उसका जीवन समाया है ! उस प्रेमाश्रु की ज्योति तो श्रद्धापूर्ण साधना की दीप-शिखा है ।"

भक्तों की श्रद्धापूर्ण भावना और ज्ञानियों की समाधि पारलौकिक जीवन की शोधन-कल्पना है; पर संतप्त हृदय की इस जीवन-समाधि से उसकी तुलना ?

जो हृदय न भावनाओं के गीत सुनाता है, न समाधि की मंत्र-साधना जानता है—केवल जीवन की ही साधना मे रमा है, उसकी समाधि क्या पूर्ण नहीं ?

समाधि-देव ! क्या तुम्हें गीत ही चाहिये, या मन्त्रों की साधना ही, और इस टूटे हृदय की अटूट समाधि नहीं ?

मुझ में और तुम में क्या फर्क ?

हम तो एक ही वन के विहंग हैं, एक ही सरिता के कूल और एक ही अनुभूति के साधक !

मैंने तुम्हें सदा अपने पास ही जाना, फिर तुम मुझ से अलग कैसे ?

अलकापुरी की परियों के सांध्यगीतों में हम दोनों का प्रेम ही तो भरा है; मेरी चाह और तुम्हारे मान में भी तो एक ही स्फुलिंग की गर्मी है ?

मेरे बन्दीगृह के उद्घाटक भी तो तुम ही हो, फिर तुम में और मुझ में फर्क क्या ?

सागर की विशाल जलनिधि मेरे सामने थी। मैं किनारे पर खड़ा था। उद्भ्रान्त उत्ताल तरंगें उठ-उठ कर फिर गिर जाती थीं। मुझे उनके उठने में आनन्द था, गिरने में शोक!

क्यों, यह मैं नहीं कह सकता!

उनके क्षणिक उत्थान और पतन मे भी एक राग था, एक सम्मोहन मूर्च्छना! उनकी गति में जीवन का स्पन्दन था, आलाप में परिवर्तन का संकेत!

लहरों के इस छोटे जीवन के संगीत में मेरे हृदय ने अपना स्वर मिलाने की चेष्टा की; पर उसमे शक्ति न थी। हृदय में एक ठेस-सी लग गई। मर्मस्थल की वेदना हरी हो उठी। तरंगों के इस क्षणिक जीवन के अभिनय को देखकर मुझे अपनी भावनाओं के स्थायित्व में सन्देह होने लगा, जिनकी अमरता के विषय मे मैं निश्चिन्त-सा था।

एक ओर सौ-सौ बार गिर कर भी ऊपर उठने की सतत चेष्टा करनेवाली लहर, दूसरी ओर मनुष्यत्व का दंभ करनेवाला मैं!

छोटी लहर से भी मेरी शक्तियाँ कितनी छोटी हैं?

जीवन के हेतु तरङ्गों का यह अविश्रान्त परिश्रम क्या मानव को अजस्र ज्योति की दिशा दिखा सकेगा?

तेरा अपराध क्या, रे कोमल पुष्प!

यौवन में झूम-झूम कर तूने प्रियतम का मिलन चाहा,

सज-सज कर उस अल्हड़ के स्वागत में परिमल का कोष लुटाया,

यौवन की सौन्दर्यमयी उत्कण्ठा में नहा-नहा कर तूने अंगराग लिपटाया?

झुक-झुक कर समीर को अपनी पराग-प्रार्थना पहुंचाने को राजी किया;

पर—

चिर-वियोग में जलना ही पड़ा—जलना ही पड़ा! तेरा वह सौन्दर्य, वह स्वागत साज! यह मिट्टी हो जाना?

पर, तेरा अपराध क्या?

रसिक मेघों की चुम्बन-लालसा सी छोटी छोटी नव बुंदियों द्वारा धुले हुए अभ्र-आकाश के नव-निर्मित मिलन मंदिर में स्नेह-प्रतीक्षा में झूमती हुई लज्जिता रजनी बाला अपनी नीलम सी सारी समेटे बैठी थी, प्रियतम के आगमन की घड़ियाँ गिनती हुई !

प्रियतम इन्दु ! वह उसकी पूजा करेगी। पूजा के लिये उसने चुन-चुन कर फूल इकट्ठे किये थे।

फूलों से झोली भरी थी, निर्बन्ध कल्पनाओं से हृदय भरा था।

पराग से फूल भरे थे, आशा से कल्पना भरी थी।

मादकता से पराग भरा था, आनन्द से आशा भरी थी।

मिलन की इस प्रतीक्षा में सारा वातावरण मौन था। मन्द-मन्द गति से बहनेवाला मलय समीर चलते-चलते डरता था, डरते-डरते चलता था। प्रतीक्षा का एक-एक पल पर्वत की तरह विशाल होता जा रहा था।

रो-रो कर मर जानेवाला चिर वियोगी पपीहा जब 'प्रियतम' कह कर पुकार उठा, सुधा-सीकर की तरह कर्ण-विवर मे घुलजानेवाला 'प्रियतम' शब्द सुन नव सुषमा-सी सुकोमल रजनी प्रियतम को आया जान अन्तिम लज्जा से सिमट-सी गई।

'प्रियतम'—प्रियतम' करता पपीहा जब नीरवता में नीरव हो गया, रजनी बाला की आँखों से वियोग का एक आँसू टपक पड़ा। उसे पोंछने को जो आँचल उठाया, तो झोली के फूल छिटक पड़े!

हे अमरऋषि! तारक जन्म के इस रहस्य को किसने समझा है?

मुझे तो शृंगार करना आता नहीं, मेरे स्वामी! मैं क्या शृंगार करूँ कि जिससे रीझ कर तुम मेरे पास ही रहो!

मेरे पास वेदना का रङ्ग है, आँसुओं का गीलापन, और कल्पना की तूलिका! इससे क्या मैं एक चित्रशाला रचूँ जिससे तुम्हारा मन मोह सकूँ!

नहीं-नहीं, मुझे तो इतना ही आता है कि तुम्हारे विराट् यौवनमय सौन्दर्य—सूर्य और चन्द्र से जो सजा है—पर न्यौछावर हो जाऊँ! उसकी पूजा कर मैं तुम्हें अपने पास, अपने ही में रख सकूँगा!

मुझे तो शृंगार करना आता नहीं, नाथ!

वीणा के कोमल तारों में से निकलनेवाली रागों की तरह मस्त कर देनेवाली अतीत की धूमिल स्मृतियों पर जब दो अनन्तों के बीच में बसे हुए भविष्य की अस्थिर कल्पनाओं का आवरण छा जाता है;

गायक ! तब मैं वर्तमान के गीत समझने लगता हूँ !

स्वप्निल भविष्य की रंगभूमि में नृत्य करती हुई आशा-लतिकाएँ जब नैराश्य के तुषार में दब जाती हैं, सुख और सौन्दर्य की मृदुल कामना-लहरियाँ जब भविष्य के अनन्त गर्भ में जलती हुई अग्नि की लपटों से सूख जाती हैं;

देव ! तब मैं आशा का मानवीय रूप पहचानने लगता हूँ !

कल्पित भविष्य का मलय समीर जब मेरी वर्तमान पीड़ा के आँसुओं को सुखा देता है, अपरिचित भविष्य के सन्तोष के विश्वास पर जब मैं अपने हृदय में झाँकता हूँ, तो विद्रोह की वे लपटें बुझती हुई दिखाई देती हैं।

हे चिर-समय ! तुम्हारा भविष्य रूप उस समय कितना प्रवञ्चक है ?

कल्पना बाला की चिर-नवीन रागों में जब कभी आशा की वाद्यध्वनि मिलती हुई दिखाई देती है, तो नृत्य करती हुई कामनाएँ नाच-नाच कर उस वाद्यध्वनि को मानो पकड़ कर वश में कर लेना चाहती हैं !

देव ! क्या कामनाओं के नृत्य को तू यह शक्ति प्रदान कर सकेगा ?

एक पर एक पड़े हुए बादलों की तरह जुटी हुई स्मृतियों में से जब कोई अज्ञात चन्द्र अपनी अरुण रश्मियों का जाल फैलाता है, तब जागृत वेदना का कलापूर्ण प्रदर्शन दिखाई देता है।

देव ! क्या वेदना की इस कला को समझने की मुझे क्षमता देगा ?

चटकती हुई कलियों की तरह मनमोहक, किन्तु लहरों की तरह चपल और विद्युत प्रकाश की तरह अस्थिर वासनाएँ जब स्वप्नों की गोदी में खेलती रहती हैं तो प्रभात-रश्मियाँ उनकी तरफ देख कर हँस देती हैं।

हे रहस्यज्ञाता ! इस मुस्कान का रहस्य तो तू ही बतावेगा !

अनन्त जीवन को धारण करनेवाला—अनन्त सौन्दर्य को रचनेवाला सूर्य जब अपनी अरुण स्मृतियों द्वारा उमड़ते हुए यौवन की तरह बढ़नेवाली उषा के सिर में सौभाग्य सिन्दूर भरता है तो वह अपरिमित आनन्द की प्रतिमा बन कर कवि के हृदय में प्रवेश करती है।

वहाँ बैठ, न जाने कौन-कौन से गीत गाने लगती है? उसकी प्रेम तरंगों में घुला हुआ गीत पत्ते और पत्तियों में, वृक्ष और लताओं में, पशु और पक्षियों में, युवक और युवतियों में प्रणय का मौन सन्देश, मिलन का मूक संगीत, अनियन्त्रित आनन्द की अव्यक्त प्रेरणा—सब कुछ प्रदान कर देता है।

सबको अपने ही यौवन का आसव पिला—सबमें अपने ही आनन्द की ज्योति जगा, अनन्त कष्टों को भुला देना चाहती है।

हे विराट् कवि! तुम हँसते क्यों हो! विशाल-हृदया उषा निकट भविष्य में होनेवाले परिवर्तन की कब परवाह करती है?

निविड़ निराशा की अचेतनता मे तुम आशा की थिरकन लेकर आये, मेरी असमर्थता उसे झेल न सकी !

मीलों की लम्बी यात्रा के बाद तुमने अपने साथ दौड़ने को कहा, पर मेरे श्रमित पैर दौड़ न सके !

प्रभात की महफिल में न आकर तुम तिरोहित होती हुई संध्या के दामन मे छिपे, पर क्षणिक देखना मुझ से न हो सका !

[illegible]

चाह में न मिल कर तुम निराशा-जन्य तिरस्कार में मिले, मिलन का उछाह नहीं हो सका !

मैं जागृति हूँ या स्वप्न, मुझे तो उनका साथ चाहिये !

यह कैसा स्वप्न, जिसको प्रिय का स्वप्न भी अपने साथ नहीं रखता; यह कैसी जागृति जिसमें जीवन की आँखें नहीं खुलतीं !

यदि मैं स्वप्न-रचना हूँ तो वह स्वप्न बन जाऊँ जो प्रिय की एकान्त रात्रियों में विचरता रहे। यदि जागृति, तो वह बन जाऊँ जिसको अनन्त जागृति का वरदान मिला रहे।

जागृति हूँ या स्वप्न, मुझे तो उनका साथ चाहिये !

अलसाती हुई रजनी की जब नींद खुल जाती है, प्रभात को उसके क्रोड़ में दे अमर चन्द्र जब छिप जाता है, तो आती हुई अरुण उषा के साथ खेलता हुआ मलय समीर उस समय किसी सुन्दरी के स्मित की तरह खिलनेवाली कलियों को न जाने कौन सा राग, किसका संदेश सुना जाता है जिसके कारण उनका यौवन एक बारगी ही उमड़ आता है। यौवन-मदिरा का वह नशा उन कलियों में झूम-झूम कर उनको रसविभोर बना देता है—उनका रूप ही बदल देता है।

देव ! यह किसका संदेश है ?

हरे हरे वृक्षों की कोमल पत्तियाँ हिल-हिल कर, नाच नाच कर किसका स्वागत करने को डोल रही हैं ? सरोवर की लघूर्मियाँ—जो कुछ ही घंटों पहले तारों के साथ खेल-खेल कर पागल हो रही थीं—मौन हो अब किसकी प्रतीक्षा करने बैठी हैं ? किस खिलाड़ी की रहस्यमय मादक कल्पना इनको निस्तब्ध बनाये है !

देव ! यह किसके स्वागत का आयोजन है ?

नदी के प्रवाह का वह कलकल निनाद, कभी न थकने-वाले निर्झर का यह संगीत, छलकती हुई मदिरा के प्याले की तरह मस्त करने वाली नव-बालाओं की यह कोमल रागिनी—सब किसके स्वागत के गीत गा रहे हैं ?

[illegible]

मादकता से ओतप्रोत स्वागत के आयोजन रचनेवाले स्वर्ण-विहान ! यह किसके स्वागत की रचना है ? प्राची का महान् पथिक सूर्य क्या इतने स्वागत का मूल्य चुका सकेगा ?

देव ! क्या सूर्य स्वागत की आड़ में छिपी हुई इस वेदना को समझ सकेगा ?

जीवन के भग्नाकाश में एक बार पुनः चमक उठनेवाली स्वप्नों की तारक-माला की ओर देख कर जब कल्पना की लोल लहरें उमड़-उमड़ उठती हैं,

चिर यौवन की खुमारी की तरह बाल-अतीत की स्निग्ध स्मृतियाँ जब बिखर-बिखर जाती हैं,

प्रेम सिंधु की एकाकी वेला पर निशा बाला के नवमुक्ता-हार की तरह चिर संगिनी वेदना जब एक बार फिर प्रकाश कर उठती है;

मैं पूछता हूँ—प्रियतम, क्या होनेवाला है ?

जीवन की उस नीरस वनस्थली में तुम्हारा प्रेम पुनः जब एक बार वसन्त श्री ला देता है, मेरी कल्पनाएँ नाच उठती हैं,

स्निग्ध समीर जब तुम्हारा कोमल राग कानों में उंडेल जाता है, तो मदकची कलियाँ तुम्हारे स्वागत के लिये खिल-खिल जाती हैं, नव-यौवना सुकुमार वन-बालाएँ झूम-झूम उठती हैं !

मैं पूछता हूँ—प्रियतम ! क्या होनेवाला है ?

किसी दिव्य प्रभात में कवि के स्वप्न सी अस्थिर उषा जब अपनी मधुकरियों के दान से वन-बाला का शृंगार सज देती है !

मेघ की नन्हीं नन्हीं बूँदें जब प्रकृति देवी को नहला कर

उसका सौन्दर्य निखरा देती हैं, और उन्हीं बूँदों के योग से जब नदी का प्रवाह अपने दुकूलों से टकरा-टकरा जाता है;

तारोंभरी राका-रजनि में छाया-पथ के दिव्य पथिक की तरह मृदु कल्पना जब कवि की वीणा को बजा-बजा उठती है,

किसी दिव्य चितेरे की भावुक तूलिका से बने हुए चित्रों की तरह लुभा लेने वाले प्राञ्जल भाव जब चमक-चमक जाते हैं;

मैं पूछता-हूँ—जीवनेन्दु ! क्या होनेवाला है ?

जीवन की सरिता बह-बह कर भी अभी उस समुद्र के गर्भ में नहीं पहुँच सकी, जिसमें मिलने के लिये वह बहती है, जिसके आलिंगन के लिये उसमें आवेग है, आवेग में चापल्य है!

उस सागर की अनन्त सौन्दर्य-राशि में मुझे अपनी हृदय-वेदना साधना के पंखों पर ले उड़ना चाहती है। परन्तु वेदना में अभी इतनी शक्ति नहीं, साधना में स्वातंत्र्य नहीं!

जीवन-सरिता की स्मृतियाँ और अनन्त सागर की कल्पनाएँ—दोनों की निकली हुई स्वर-लहरियों ने एक संगीतात्मक छंद की रचना होती है जिसे मैं ही सुनता हूँ, मैं ही समझता हूँ!

जिस दिन इस एकाकी जीवन की रूप-विहीन स्मृतियाँ सागर के जीवन की अनेक रूपी कल्पनाओं में समा जायेंगी उसी दिन मेरी जीवन-सरिता उस सागर के अनन्त जीवन में मिल जायगी।

कल्पना की डोरी पकड़े पकड़े कामना जब जीवन के एक स्तर से दूसरे पर चढ़ती जा रही थी,

आशा के आँचल में छिप कर दबी हुई वेदना जब शनैः शनैः मुखरित होती जा रही थी,

जब चढ़ती हुई कामनाएँ टूटी हुई स्मृतियों के खण्डहरों से निकल कर आशा के प्रकाश में नये भवन निर्माण कर रही थीं,

किसी अज्ञात समीर के झोंके से, असंतोष की आग फिर से जल उठी—वेदना की वीणा फिर से मुखरित हो उठी!

हे करुणा सिन्धु! यदि अपने करुणामृत की एक बूँद इस ओर उँडेल दो—तो एक जलते हुए हृदय को संतोष मिल जाय; एक टूटता हुआ जीवन फिर से जीवित हो उठे।

जीवन! क्या तुम्हारे अमृत-घट से मुझे एक बूँद भी न मिल सकेगी?

आज तो साकी, तू अपनी हीरक मदिरा का घट खोले बैठा है। झूमते हुए प्रेम को बुला-बुला कर, पिला-पिला कर फिर पिला देना चाहता है। अपनी कल्पनाओं की मदिरा पीकर कभी नहीं थकनेवाला प्रेम तेरे हाथों की मदिरा पीकर कैसे अघाया है आज! क्या तू सब कुछ आज ही पिला देना चाहता है? कल के लिये कुछ भी न रखेगा? सचमुच कल क्या मुझे विरहानल की चिनगारियाँ ही जलायेंगी?

यदि पिलाने के लिये नहीं तो क्या तू पीने के लिये भी कल न आवेगा? तू यदि मदिरा का घट भर सकता है, तो क्या मैं एक प्याली भी न पिला सकूँगा? अपनी वेदना के रत्न जटित प्याले में क्या आज की मिलन-स्मृतियाँ ही मदिरा न बन जायँगी? आज का आनन्द और कल के उच्छ्वास ही क्या उसकी मादकता न बन जायगी?

गीत में राग की तरह उस दिन तो मेरी कल्पना जीवन के मसृण में घुल घुल कर भविष्य की स्वप्न-साधना पूरी करती थी ! उन स्वप्नों में किस के जीवन की स्नेह-भंगिमा पर मैं रीझा था, बन्धु !

क्या स्वप्नों में भी इसका उत्तर न मिल सकेगा ?

जीवन के स्मित में जिन स्वप्नों को रचा था—देखा था, क्या इस रोदन में उनको न पा सकूँगा, नहीं पाकर भी क्या उनकी वेदना खो सकूँगा—और नहीं खो कर भी क्या उन्हें जीवन में रख सकूँगा ?

उतर पड़ो हे बहु-विसर्जित सपने, रोदन-गान भरे इस जीवन में !

आज के सूने जीवन-नभ में क्या फिर कभी वह विद्युत-प्रकाश न होगा ? जीवन—सरसि में वह स्वप्नों का सा ऊर्मि-नाच ?

कहाँ है वह राग, वह अलाप, वह मूर्च्छना, जीवन-वंशी का वह स्मृति-भरा मधुर स्वर; वह दिव्य संगीत जिसने जड़ को चेतन और चेतन को मुग्धता से जड़ सा बना दिया; वह मदभरी सुरीली तान जिससे कवि का हृदय रसविभोर हो कविता करने लगता है; वह करुणा भरी मंजुल मूर्च्छना जो प्रणय-पीड़ा की तरह हमारे मन-मयूर को नचा-नचा उठती है।

हे विश्व गायक! बता दे वह कहाँ है?

कहाँ है प्रेम का वह प्याला जिसकी सुरा पी सूर्य और चन्द्र वर्षों से तप रहे हैं! स्नेह का वह अमृत-घट कहाँ है जिसमें डूब-डूब कर कवि की कल्पनाएं अमर हो गईं? कहाँ है प्रेम-वेदना का वह आँसू जिसने थिरक थिरक आशा के घर में दीपक जलाया और चिर स्नेह की वे फुलझड़ियाँ जो आज भी टूटी स्मृतियों की तरह मेरी आँखों में चमक-चमक जाती हैं?

हे प्रणयी! बता दे वह कहाँ है?

कहाँ है पतझड़ का वह वार्धक्य, वसन्त का उभरा यौवन, और पावस की वह चिर व्यथित रिमझिम जिसने कालिमा लहरा लहरा जाती है? घोर तिमिराच्छन्न बादलों में—निराशा में आशा की तरह—चमक-चमक जानेवाली वह विद्युत कहाँ, जो वेदना को हिला हिला देती है?

मेरी स्मृति के नेत्रों से दूर कल्पना का वह सरोवर, जिसमें अनन्त चन्द्रमा, अनन्त उद्भ्रान्त नक्षत्र वीचियों के साथ खेल-खेल जाते हैं; सूर्य की वह रक्तवर्णा प्रभा जिसको छूने के लिये कमल अपना हृदय खोल सौरभ और पराग बिखेर देता है ?

हे कवि ! बता दे वह कहाँ है ?

ऊँचे ऊँचे पर्वतों के बीच में से—उनकी अनेक ऊँची नीची घाटियों में से बड़ी उमङ्ग के साथ एक ही राग, एक ही विहाग से परिपूरित नदी का प्रवाह कितने युगों के पश्चात् इस समतल स्तर पर आया है !

हम इसे अपने अनुमान से मधुर-मधुर सौन्दर्य में एक अमृत-निर्झरणी समझ फूल उठते हैं, परन्तु हमारे इस समझने में कितना सत्य है—यह तो उठ-उठ कर लड़खड़ा जाने-वाली असंख्य लहरों के मूक रोदन से पूछना है ! कवि का हृदय तो बराबर मन्द-मन्द गति के इस जीवन में नदी के हृदय की सिसकियाँ सुनता है ! ऊँचे-ऊँचे चट्टानों पर से गिर कर—नदी का प्रवाह जिस उमंग के साथ बहता है—संघर्ष मय जीवन की वह तीव्र गति इस ऊँच नीच विहीन जीवन में कुछ मन्द होती हुई सी जान पड़ती है !

यह नदी के प्रवाह का एक छोटा रहस्य है—उसके जीवन का मूक संदेश !

भावना !

हृदय की उत्कट भावना जिस वनमार्ग में होकर, जिस शून्य आवरण में से निकल कर और जिस विहागपूरित ककुभ-मंडल की सरसराती वायु के साथ हिलोरें लेती हुई चलती है, उन सब में एक ही तीव्र कामना, एक ही मादक प्रेरणा और एक ही चकित स्वप्निल साधना है !

इसी भावना के प्रांगण में जीवन का रोना-रुलाना, हँसना-हँसाना, समझना-समझाना सत्य है और सुन्दर भी ! इसी भावना से शून्य होकर तो हृदय की शक्तियाँ कुण्ठित, जीवन की रचना संकुचित और ज्ञान की साधना विफल है। भावनाहीन होने पर हृदय का प्रकाश मन्द और बुद्धि का विलास संकीर्ण हो जीवन की मूक वेदना का बहु-अर्थी सौन्दर्य अपनी सम्पत्ति से लुट सा जाता है।

भावना के स्नेह-योग से जीवन का सौन्दर्य चमकता है—उभरता है।

यह तो बेकीमत का मोती है; इसका दाम क्या आँकना ?

जब से इसको पाया है, तब से यह मेरे जीवन की हलकी—उघड़ती तहों में छिपा है ! इस पर न जाने कितने जौहरियों की नजर पड़ चुकी है, न जाने कितनों की कीमत यह स्वयं आँक चुका है ?

यह मेरा मोती बेकीमत है, न जाने जीवन-उदधि के किस गहरे अन्तस्तल में यह आब लाया है, न जाने कितने जल-जलों में यह उतर-चढ़ कर दीख पड़ा है, न जाने कितनी विभूतियों का सार इसमें भरा है !

यह तो बेकीमत का मोती है।

असंख्य उद्भ्रान्त कल्पनाओं के पंखों पर उड़-उड़ कर भी जीवन-विहंग उस चिदाकाश के जीवन-ज्योतिर्मय वायु-मण्डल में नहीं पहुँच सका, जिसके लिये वह पागल बना-बना उड़ता था, जिसकी स्वप्निल नव-ज्योत्सना-ज्योति की चिर आशा में वह अपनी वेदना की परिधि में उड़ता उड़ता भी उस ओर जाने की प्रोल्बण कामना किया करता था !

कामनागत निष्कामता ने प्रेरणा की, जीवन-साधना ने उसके पंखों को शक्ति दी, किसी वेदनात्मक अनुभूति की शक्ति पा वह उस स्वर्णिल विहागपूर्ण जीवनाकाश की ओर एक बार फिर उड़ा, पर कल्पना की छलांग अनुभूतियों की क्षुद्रता में अटक गई !

जीवन ! किसी व्यापक वेदनात्मक जीवनानुभूति से ही उस चिर जीवनपूर्ण आकाश में तू अपना जीवनालय बना सकेगा !

जैसे मैं स्वयं अपनी कल्पनाओं का स्वप्न हूँ—वैसे ही स्वर्ग भी मेरी कल्पनाओं का प्रकाश है, किन्तु जब अपनी कल्पना की खिड़की में से कूद कर मैं जीवन और मृत्यु की द्वन्द्वभूमि में आता हूँ तो मैं कल्पनाओं का स्वप्न नहीं रहता, कल्पना स्वयं मेरे स्वप्नों में समा जाती है ! अनुभवों के प्रकाश में कल्पना अपना सौन्दर्य छिपा लेने का प्रयत्न करती है !

स्वामी ! जीवन और मृत्यु की यह कैसी अवस्था ?

अनुभवों की तूलिका से मैं जब-जब कल्पनाओं के चित्र बनाने का प्रयत्न करता हूँ, तो कल्पनाएँ छिप जाती हैं; और कल्पनाएँ आती हैं, तो तूलिका हाथ में नहीं रह पाती। क्या चित्र बना कर भी मैं अपनी कल्पनाओं पर अनुभव की तूलिका नहीं चला सकता ?

हे कलापुञ्ज ! जीवन और मृत्यु का यह कैसा अभिनय ?

उस दिन मैं नदी के किनारे पर बैठा हुआ युगों से खेलती हुई लहरों को गिन लेने का प्रयास कर रहा था। बहते हुए वायु में जो शीतलता, जो स्निग्धता, जीवन-दान करनेवाली जो उच्छ्वासिता थी—वही लहरों का सङ्गीत बन कर हृदय में भावों का स्पन्दन करने लगी।

सौन्दर्य-गरिमा पर इतराता हुआ हृदय उस स्पन्दन में अपनी कामनाओं का किंकिण-नाद तो सुन सका, किन्तु जीवन को जीवित रख सकनेवाला वह अमर संगीत नहीं, जिसकी प्रेरणा से लहरें खेलती हैं और वायु बहता है। मैं तो लहरों की गणना में व्यस्त था, न मैंने उनके नर्तन के रहस्य को समझा, न उनके मूर्च्छनामय संगीत को सुना।

रात्रि के तमोमय आवरण में से अपना अरुण प्रकाश फैलाता हुआ चन्द्र-लहरों के जीवन में अमरता की सुधा ढुलकाने वाला चाँद हँस-हँस कर कह रहा था—"लहरों की गणना तो तब करो, जब अपनी कामनाओं को गिन चुको।"

अपने इस प्रयास मे मैं यदि वह जीवन-संगीत पा सकता जिससे लहरें खेलती हैं······!

मेरी वेदना जीवन का वह पारस पत्थर है जिसको छूकर हृदय की और-और भावनाएं भी सुवर्ण बन जाती हैं। उसकी अमृत-धारा में डूब कर संगीत नया हो जाता है; वह तो भूली हुई आत्मा का प्रकाश है! जीवनरूपी सर्प के मस्तिष्क की मणि है! जिसके पास यह रत्न है, वही जीवन का मर्म समझता है! जीवन का आलोक वेदना के प्रकाश में है।

देव! यदि तूने मुझे इस रत्न के मूल्य को समझने की बुद्धि दी है, तो उसको रखने का साहस भी तो दे!

मैं तो यह चाहता हूँ कि जर्जरित स्मृतियों की माला बनाऊँ और उस माला के बीच में इस रत्न को पिरो कर गले में पहने रहूँ!

क्या मैं इतना भी नहीं कर सकूँगा?

नीले आकाश पर घनघोर बादलों के गर्जन में जो नाद होता है—क्या वह जलवृष्टि के लिये होता है या होता है केवल मानवता को आकांक्षा के पंखों पर उड़ा कर निराशा के श्मशान में ला डालने को ?

विहंग के नीड में जो यह चह-चह होती है, वह उसकी वेदना लहरी का कलकल-निनाद है, या है उसकी निराशा का रोना ? इसमें उसके जीवन का गान है या उसका रोदन ?

यह जो मैं अपने हृदय में एक धीमी-धीमी झंकार सुनता हूँ—यह कोई नई कसक है या अनन्त वर्षों की चुपचापी का कारुणिक स्वर ?

इस टूटे स्वर में जीवन का आमन्त्रण है या उसकी ग्लानिपूर्ण निराशा ?

मैं कलाविद् हूँ, पर जीवन की कला नहीं जानता !

मेरे चारों ओर प्रकाश है, पर अन्धकार का राज्य मैं उससे नहीं पा सकता !

मैं कवि हूँ, पर तुम्हारी कविता का अनन्त नहीं समझता !

मैं पुजारी हूँ, पर पूज्य का स्वरूप नहीं जानता !

मैं दानी हूँ, पर दान का मार्ग नहीं पहचानता !

मैं मनुष्य हूँ, पर मनुष्यता का अर्थ नहीं जानता !

+ + +

तू तो सभी जानता है, इसलिये मेरे सभी अभावों की पूर्ति कर सकता है।

यदि मैं तपस्वी होता तो उस सघन वन में तपस्या करता जहाँ सूर्य और चन्द्र जैसे तपस्वियों का वास है!

उस मंत्र की साधना करता, जिससे जीवन का धूम्रकेतु अस्त होना भूल जाता!

उस धारा का जल पीता, जिसमें किसी के स्नेह रसीले वियोग की लहरियाँ समाई होतीं!

उस स्वप्न की समाधि जमाता, जो वास्तविकता बन कर समाधि खुलवाता!

यदि मैं तपस्वी होता, तो वह भस्म रमाता जिसमें उस चिर-स्वप्न की राख मिली होती!

यह मूक मनुहार मेरे जीवन की चिरसंगिनी है !

न जाने अमृत के किस सरोवर में इसने हिलोरें ली हैं जो आज तक उठने-गिरते ज्वार-भाटे में इसकी अमरता सजग है—सम्पूर्ण !

तुम्हारी ठोकर खाकर मैंने इसे निकाल देना चाहा; पर ठोकर की पीड़ा में भी इसने अपनी अमरता घोल दी।

इससे दूर रह कर मैं अपमान से बचना चाहता हूँ, पर स्मृतियाँ इसे अलग नहीं कर पातीं;

यह तो चिरसंगिनी जीवन-प्राण है !

तुमसे मेरी एक ही लड़ाई है !

तुम यदि बड़े होने का गर्व न करो, तो मैं छोटा क्यों कहलाऊँ ?

तुम यदि अपने को दानी न कहो, तो मैं भिखारी क्यों कहलाऊँ ?

तुम यदि अपने को महान् न कहो, तो मैं खुशामदी क्यों समझा जाऊँ ?

यदि तुम अपना सौन्दर्य निखारो नहीं, तो मैं रूप-लोभी क्यों कहा जाऊँ ?

यदि तुम अपने को पूज्य न कहो, तो मुझे लोग पुजारी क्यों कहें ?

मेरी तो एक ही लड़ाई है !

तेरी छटा का वर्णन कर कितनी विभूतियाँ अमर हो गईं !

तेरे महा संगीत की एक-एक तान बजा कर कितने धर्म स्थापित कर दिये गये !

तेरी शुद्धता और निष्कामता का गान कर-कर कितनों की समाधि पूर्ण हो गई !

तेरे सौन्दर्य के स्वप्न रच कर कितने कवि हो गये;

पर, तेरी विराट् छटा ने मुझे तो मूक बना दिया !

यदि मैं देवता होता, तो अपनी देवपुरी में मानव को निर्बंध आने देता !

यदि मैं कुबेर होता, तो अतुल धनराशि को जन्मभूमि की क्षुधा के चरणों मे बिखेर देता !

यदि मैं इन्द्र होता, तो पपीहे को तरसने न देता !

यदि मैं विहंग होता, तो उसी टहनी पर बैठा करता जहाँ 'उसके' प्रणय की कोंपल निकलती !

यदि मैं स्वर्ग होता, तो नरक को अपने में समा लेता !

मैं हूँ—पर यदि होता······?

मैंने उनसे एक गीत सुन लिया था!

उन एकान्त रात्रियों में जब मैं और वे स्वप्न-लोक में साथ-साथ विचरते थे, वे वही गीत गाया करते थे!

अश्रु-गंगा के फेनिल वक्ष पर जब मैं उन्हें झुलाता था, तब वे मुझे उसी संगीत से आह्लादित करते थे!

बन्दीगृह के सींकचों में होकर जब मैं उन्हें बुलाता था, तो वे इसी संगीत के साथ आलोकित होकर आते थे!

किसी स्मृति की ठेस से जब मेरे नयनों में आँसू भर आते थे, तो वही गीत गाकर वे उन मोतियों को बटोरते थे!

आज वे नहीं आते, पर मैं जीवित हूँ, क्योंकि मैंने उनसे वह गीत सीख लिया था।
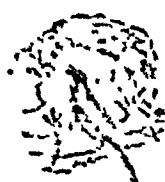
मेरी कुटिया में विद्युत-प्रकाश नहीं होता, केवल स्नेह का दीपक जलता है;

जिसमें यदि चकाचौंध नहीं, तो बुझ जाना भी नहीं है!

जिससे यदि प्रकाश की सजावट नहीं, तो कुटिया स्नेह-भरी तो हो जाती है!

जिससे यदि स्वरूप की आभा नहीं चमकती, तो हृदय तो प्रकाशित हो उठता है!

जिसमें यदि बाहरी आकर्षण नहीं, तो अन्तर का समर्पण तो है!

मेरी कुटिया में विद्युत प्रकाश नहीं, वहाँ तो स्नेह का दीपक है।

तुम यदि इतनी देर भी ठहर सको कि मैं अपना गीत गा लूँ और तुमसे जीवन का सन्देश पूछ लूँ;

मैं थक गया हूँ; तुम यदि इतना भी कह दो कि अनन्त-काल से सूर्य और चन्द्र पृथ्वी की सेवा करते-करते थकते क्यों नहीं ?

तुम यदि केवल इस तरह हो जाओ कि मैं अपने हृदय-पटल पर तुम्हारी छवि की प्रतिलिपि उतार लूँ:

तो प्रिय, दूर रहते भी मैं तुम्हें अपना ही समझूँगा।

मेरे हृदय में झाँक कर तुमने यह परवशता क्यों उत्पन्न कर दी ?

तुमने झाँका क्या, शान्त लहरों को उद्वेलित कर दिया; तुम्हारा सस्मित वदन देख हृदय का महासागर अनुराग का ज्वार ले उठा ।

तुम्हारी जिज्ञासा पा बुझी हुई आग फिर ज़हूर उठी—ज़हूर उठी और फिर जलाने लगी।

प्रेम की हसरतों में नाकामयाब हो, मैं सब प्रयास त्याग स्वतन्त्र हो गया था।

तुमने झाँक कर यह परवशता क्यों उत्पन्न कर दी ?

तुम जाते हो और मैं यहाँ ठहरा रहूँ ?
वसन्त चला जाय और कोकिल की कंठ-ध्वनि ठहरी रहे ?
आँखें खुली रहें और तुम्हारी ज्योति मन्द हो जाय ?
संगीत होता रहे और महफ़िल बिखर जाय !
प्याले चलते रहें और मयख़ाना बन्द हो जाय ?
नक्षत्र चमकते रहें और पथिक गुम हो जाय ?
जीवन चला जाय और शरीर खड़ा रहे ?
तुम जाते हो और मैं यहाँ ठहरा रहूँ ?

उसकी क्षमा को धन्य है जिसने मेरे काव्य-वैभव की दरिया को अपने स्वर्ण-संसार में बहने दिया,

जिसने मेरे तिलमिलाते समर्पण को अपने प्रणय-अश्रुओं से सींच कर उस रसोपवन में अपनी कोकिला को ला बिठाया।

बादलों में जब स्नेह के मेघ भर आये, तो उसके अश्रु स्वयं फुहार बन गये;

स्नेह-लोक में जब परियों की महफिल हो उठी, तो उसके मूक गीत ही कोकिल की काकली होकर निकल पड़े।

मयखाने में जब मस्ती झूम उठी—झूम उठी और मदिरा नहीं रही, तो भी उसके अधरों की मदिरा से मस्ती झूमी !

उसकी क्षमा धन्य है जिससे विमुख हुआ समर्पण भी स्नेह की दरिया में पिघल पड़ा—संगीत के स्वर में मुखर उठा !

वियोगी, तुम पपीहे से सीखो वियोग की साधना !

वियोग स्नेह की हसरतों पर रंग लाता है— उन पर मोतियों का हार चढ़ाता है;

वियोग की अखण्ड समाधि और उसकी जलानेवाली खुमारी न जाने संसार की कितनी वेदना का मूल्य है ?

वियोगियों के अरमान में कितने स्नेह-रसीले स्वप्न हैं— कितने कुंजों का क्रीड़ा-चापल्य ?

वियोगी, केवल स्वाति की बूंद पर ही निर्भर रहनेवाला, एक-एक पुकार में वेदना का साम्राज्य लिये रहनेवाला पपीहा सात्विक वियोग का आदर्श है !
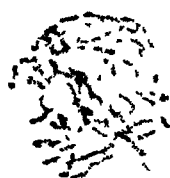
मुसाफिर, उस वन में जाओ, पर उसका नाम न पूछो !

बसन्त और पतझड़, यौवन और जरा, मिलन और विछोह, उजेले और अन्धकार, भ्रम और सत्य के सुनहले स्वप्न वहाँ है, पर वह स्वप्न लोक नहीं है !

वहाँ परियों का सौन्दर्य और पार्षदों की चहल-पहल है, वहाँ स्वर्ग के पारिजातों का सौरभ छितरा है और नन्दन वन की कोकिला कूजती है—कूजती है और स्वर्गीय संगीत उँडेलती है; पर वहाँ स्वर्ग नहीं है,

वहाँ चिरन्तन प्रकाशवती वह ज्योति निखरी है, जिसमें रम कर स्वर्ग के सपने मानव की समाधि पूर्ण करते हैं; वहाँ वह अग्नि जलती है, जिसका स्फुलिंग ही मानव का जीवन है, पर वह ज्योति-निलय नहीं है !

मुसाफिर, उस वन का नाम न पूछो !

उषा की गोद में उस दिन तू अनुराग की लाली लिये जीवन के विस्तृत नभ में चढ़ा था; चन्द्रविहीन अन्धकार में तड़फता हुआ कवि का हृदय तेरी जीवन-ज्योति की कामना में पगा सा उड़ रहा था !

तेरा प्रकाश पा वह कला को चमका सकेगा !

तेरा अनुराग पा वह कविता को अनुरंजित कर सकेगा !

तेरी क्रीड़ा से वह वेदना को सरस कर सकेगा !

ये उसकी कल्पनाएं थीं; वह अपनी कल्पनाओं में उड़ा फिरता था !

साधना की पूर्ति पा कवि के जीवन में उछाह था, आँखों में मोतियों की आभा।

+ + +

संध्या की गंभीर लाली में आकाश पर अनुराग का तिलक कर उसी अनन्त लाली में न जाने तू कहाँ छिप गया ?

क्यों चढ़ा था, क्यों चला गया ?

मेरी कविता पूरी न हो सकी; मेरे चित्र की कल्पना अधूरी रह गई; मेरी कामना मार्ग पा रही थी कि तू फिर धक्का दे गया !

क्या भाता था तुझे मेरे सस्मित जीवन में, क्या न भाया तुझे मेरे इस उच्छ्वासित जीवन-वारिधि में !

मेरी अन्धकारमय जीवन-कुटिया में न जाने कब से यह आवाज़ होती है; अपनी शक्ति और साधना के दीप जला-जला कर मैंने बहुत ढूँढ़ा, पर कहीं पता न चला। जीवनदेव! वह बल, वह प्रकाश कहाँ से पाऊँ, जिससे इस आवाज़ का उद्गम ढूँढ़ू—इसका रहस्य उद्घोषित करूँ!

प्रार्थना पर बरसे हुए इस स्नेह ने कुटिया को प्रकाशमय कर दिया; अब तो मैं सभी कुछ ढूँढ़ सकता हूँ, पर वह आवाज़ तो बन्द हो गई। देव! यह अभिनय कैसा? जब आवाज़ थी तो प्रकाश नहीं था; जब प्रकाश है, तो आवाज़ नहीं!

\+ \+ \+

अन्धकार की आवाज़ प्रकाश में नहीं ठहरती, साधक!

क्या······ ?

यह सब क्या है ?

पपीहे के वियोग-गीतों में, लहरों के विकल स्पन्दन में और कामना की अतृप्त स्मृतियों में किसका रोना है, किसका अपनापन ?

किसके जीवन की यह अनन्त मधुर छाया है, जिसमें इन सब की वेदना का सम्मेलन ?

यह सब क्या है ? किस चन्द्र का उमड़ाया ज्वार-भाटा !

जीवन-वेदना ! तुमने इसको अपने से इतना अलग कर दिया है कि .... यह सब क्या है ?
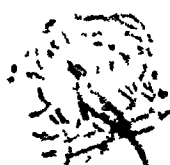
मैं तुम्हारी ज्योति का भिखारी हूँ !

मुझे अपने दोषों का ज्ञान है, पर उन्हें कहाँ छिपाऊँ !

मुझे अपनी भूलों की स्मृति है, पर उसे छोड़ क्या उपहार लाऊँ ?

मुझे अपनी क्षुद्रता का अनुभव है, पर उसे छोड़ तुम्हें क्या विनय दे सकूँगा ?

मुझे तुम्हारी सौन्दर्यमयी चिर-महानता और अपनी अन्धेरी विकलता का अनुभव है, पर इनसे बाहर तुम्हारी ज्योति कहाँ पा सकूँगा ?

मैं तुम्हारी ज्योति का भिखारी हूँ !

तुम क्यों पूछते हो कि मेरा घर कहाँ है और काम क्या है ?

आज तक मैं इसका उत्तर नहीं दे सका ! मेरा घर इतना वड़ा है कि वह सपनों में ही समा सकता है; मेरा काम इतना क्षुद्र और वड़ा है कि मैं कहता हूँ और दुनिया नहीं समझती।

न मुझे घर का पता है, न काम का ! एक आदेश होता है और मैं कार्य के लिये संचालित होता हूँ; एक संकेत होता है और मैं घर के लिये चल देता हूँ; एक संगीत होता है और मैं गाये जाने के लिये तैयार होता हूँ !

मुझसे क्यों पूछते हो कि मेरा घर कहाँ है—काम क्या है ?

कोयल ! तू मेरे लिये न गा, मैं तो स्वयं गान हूँ !

जिस संगीत की मूर्च्छना पर दिन और रात की गति संचालित है, मैं तो उसी मूर्च्छना का अंग हूँ !

वायु ! तुम मेरे कानों में वह संदेश न उँडेलो, जिसको न पाकर ही मैं वेदना के गीत गाता हूँ !

कल्पना ! तुम मुझे आकाश में न उड़ने दो, जिससे मैं विरह में धैर्य का अमृत घोल सकूँ !

आकाश ! तुम मुझे अपना संगीत न समझाओ जिससे मैं देव के तरानों में उलझा ही रहूँ !

प्रणय-पिपासु! प्याला मयखाने में छोड़ कर, संगीत महफ़िल में छोड़ दे! तू तो अपना जीवन रिक्त रख!

अपने अश्रुओं की गर्म धारा को किसी अज्ञात किनारे से सागर की लहरों को दे दे और हास्य को पीड़ा के जल में बुझा दे! तू तो अपने को निरूप रख!

स्मृतियों से मूक प्रेरणा का काम ले और वियोग से पिपासा को तीव्र सा बना। तू तो अपने को जलता हुआ रख।

प्रणय-पिपासु! तू तो अपना जीवन रिक्त रख; न जाने उसकी तीर्थ-धारा कब तेरी ओर उमड़ उठे!

जब मेरी स्मृतियों के दीपक रच-रच, जल-जल स्वयं प्रकाशित होते हैं; जब उनका प्रकाश भर-भर, चमक-चमक कर आत्मा के उस पथ पर गिरता है, जिस पर से चल-चल कर वह इस ओर मुड़ी, जिसमें से उठ-उठ कर वह इन स्वप्नों में पहुँची, जिसमें रंग-रंग कर वह इस चित्र-व्योम में उड़ती, तो एक ज्योति दिखती, एक गायन होता और एक सपना उठता, जिसके रचने रचने ही में वह चित्रित सी हो जाती !

चित्रकार ! मुझे तेरी उस तूलिका की पूजा करने दे !

जो कसक-कसक सी जाती वेदना, वह अब झन-झन करती ! जो उठ-उठ कर गिरती कामना, वह अब भर-भर कर रचती साधना ! जीवन भरता, जीवन उठता, जीवन रंगता जीवन की कामना ! इसी जीवन को ले-ले मैं तुम्हारे स्नेह व्योम में बादल बन-बन उड़ता—अपने पतझड़ में सूखा पत्र बन कर गिरता किन्तु तुम्हारे बसन्त में कोंपल बन आता। अपने जीवन में मृत्यु का अभिसार करता, पर तुम्हारे स्नेह-समुद्र में पड़ते ही पुनर्जीवित हो जाता !

चित्रकार, रंग दे मुझको नवरंग से; रंग ले मुझसे अपनी करुणा को !

मेरी पीड़ा वह रंगीनी है जिसमें जीवन के ज्योतिर्मय उषा का रंग पाते हैं !

मेरे आँसू उस सागर की लहरें हैं, जिसकी उर्मियों का कभी उतार नहीं होता, जिसके वक्ष पर सदा आनन्द की छाया प्रकाशित रहती है !

मेरा हृदय उन मणियों की खान है, जो आज तक किसी के प्यार की भेंट न हो सकी !

मैं उस जीवन की मुस्कुराहट हूँ जिसमें वेदना ही हास्य का अग्रदूत पाता है !

मैं उस लहर का कंपन हूँ, जो चिर अशान्ति की आँच से जलती है !

मेरे ऐबों पर तुम इतने क्षुब्ध क्यों हो ?

मेरे साथ जाम की भरी खुमारी में झूमते हुए तुमने मुझे अपने साथ मलयानिल के घोड़ों पर ले उड़ने को कहा था, पर वह दिन आज तक न आया !

तुम्हारे अपरिचित स्नेह में गलबाँही डाल कर मैंने अपनी पावनता नष्ट की पर तुम कभी उस गलबाँही में न बँध सके !

तुम्हारे वियोग में अपने पुनीत यौवन को जला कर ख़ाक कर दिया, पर तुम्हारे प्रेम की सुरा न मिल सकी !

इतने ऐबों पर भी मैंने तुम्हें क्षमा किया और आज तुम मेरे ऐबों पर क्षुब्ध हो !
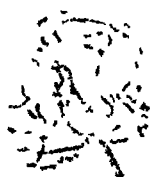
यात्री,

यों यकायक रुक कर जीवन के उच्छ्वासों को समाधि-स्थल पर पहुँचने से पहले मार्ग में ही न बिखेर!

इन्हें वहाँ ले जाकर डाल जहाँ विश्व का मधु सौन्दर्य 'उसकी' तेजोमय मूर्ति का पावन अभिसार झूमते हुए ज्योतिर्पद्मों पर करता है।

यदि वह समा देख कर तू अपने नेत्र खुले न रख सके तो भी उस संगीत को सुनना न भूल जाना जिसके तरानों में जीवन और मृत्यु एक ही प्याले के झागों में छलकते मिलते हैं।

यदि कविता करने को अब जी नहीं चाहता तो इन स्वप्नों को लेकर काल की मंदाकिनी में स्वयं उतर पड़ और इन स्मृतियों को उसके अन्तर्तम तल पर छिपादे।

यदि कोई कविता से भी गहरा उतरेगा, तो मंदाकिनी-तल की ये स्मृतियाँ उसको बहुमूल्य साधना समझावेगी।

यात्री, जीवन-यात्रा के उच्छ्वासों को बिखेर न दे!

न. नवे

1295